श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खण्ड ७७

अर्जुन को विश्वरूप दर्शन

श्री भागवत दर्शन

भागवती कथा

खण्ड ७७

गीतावार्त्ता (९)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृतं वै प्रभुदत्तेन भागवतार्थ सुदर्शनम् ॥

—:०:—

लेखक :
श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

✱

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग

—:※:—

प्रथम संस्करण
२००० प्रति

सं० २०२७

मू० १.६५ पं०

मुद्रक—वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग

कीर्तनीयो सदा हरिः

सचित्र

भागवत चरित

(सप्ताह)

रचयिता—श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

श्रीमद्भागवत के १२ स्कन्धों को भागवत सप्ताह के क्रम से ७ भागों में बाँट कर पूरी कथा छप्पय छन्दों में वर्णन की है। श्रीमद्भागवत की भाँति इसके भी साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पारायण होते हैं। सैकड़ों भागवतचरित व्यास बाजे तबले पर इसकी कथा कहते हैं। लगभग हजार पृष्ठ की सचित्र कपड़े की सुदृढ़ जिल्द की पुस्तक की न्योछावर ६)५० मात्र है। थोड़े ही समय में इसके २३००० के ५ संस्करण छप चुके हैं। दो खंडों में हिन्दी टीका सहित भी छप रही है। प्रथमखंड प्रकाशित हो चुका है। उसकी न्योछावर ८) है। दूसरा खंड प्रेस में है।

विषय-सूची

अपनी निजी-चर्चा

[८]

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे।
नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥*
(श्री भाग० ४ स्क० २४ अ० ४१ श्लोक)

छप्पय

सब रूपनि में करत कलित क्रीड़ा बनवारी।
करवावें वे करम भुगावें फल लघु भारी॥
कबहूँ सुख बनि जाइँ कबहुँ दुख बनिकें आवें।
जीवन बनि प्रकटाइँ मृत्यु कबहूँ बनि जावें॥
वेई सुख दाता बनें, दुख दाता बनि जात हैं।
तिनि प्रभु पद बन्दन करूँ, जो वहु नाच नचात हैं॥

जीव यदि सब स्थितियों में भगवान् की ही इच्छा का अनुभव करे, तो वह दुःख, चिन्ता, भय तथा शोकादि से सदा के लिये छूट जायगा। हम दुखी इसीलिये होते हैं। कि कर्मों में अपना

---

* पितर तथा देव स्वरूप प्रभु को नमस्कार है, कर्मस्वरूप को नमस्कार है, प्रवृत्ति मार्ग स्वरूप को नमस्कार है, निवृत्ति मार्गरूप प्रभु को नमस्कार, अधर्म के परिपाक स्वरूप भगवान् को नमस्कार है, मृत्यु रूप भगवान् को नमस्कार है और दुःख देने वाले भगवान् को नमस्कार है।

कर्तृत्व स्थापित कर लेते हैं। हमारी यह दृढ़ धारणा हो जाय, कि जो कुछ कर रहे हैं भगवान् ही कर रहे हैं। भगवान् अनेकों रूपों को रख कर सम्मुख आते हैं। कभी वे संत रूप में आते हैं, कभी सिंह बनकर आते हैं। कभी सुख बनकर तो कभी दुख बनकर। कभी स्वस्थ बनकर तो कभी रोग बनकर। सारांश यही कि विविध रूपों में वे ही क्रीड़ा कर रहे हैं। सब रूपों में केवल उनको ही देखने का अभ्यास हो जाय, तो उस साधक को जगत् ब्रह्ममय दीखने लगेगा। वह दुख-सुख के बन्धनों से छूटकर कृतार्थ हो जायगा।

हाँ तो प्रयाग उच्च न्यायालय ने मुझे मुक्त कर दिया। देहली में सत्याग्रह हो रहा था, नित्य ही सत्याग्रही जत्थे जाते थे, पकड़े जाते थे। मेरे जेल जाते ही कुछ कार्य कर्ताओं में भी पद प्रतिष्ठा के लिये वाद-विवाद चल पड़ा था, जो कि स्वाभाविक ही था, अधिकारियों की ओर से कुछ समझौते का भी संकेत मिला था। इन सब बातों की जानकारी के लिये यहाँ से मैंने देहली होकर ही श्री वृन्दावन जाने का निश्चय किया। बिना किसी को मार्ग में सूचना दिये हम देहली को रेल से चल पड़े। सरकार की ओर से जिस-जिस स्टेशन पर रेल खड़ी होती थी, उस-उस स्टेशन पर पुलिस का प्रबन्ध था, हम अनशन की दशा में ही देहली स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ पर बहुत से भाई उपस्थित थे। सरकार की ओर से बड़ी सतर्कता बरती जा रही थी। जो भी गौ माता की जय बोलता उसे ही पकड़ लिया जाता था। दो दिन मैं देहली में स्वर्गीय लाला सूरज-नारायण जी के घर पर रहा। वहाँ आकर प्रायः सभी कार्यकर्ता मिले। श्री गोलवलकर जी गुरु जी भी मिले। जनसंघ के महामंत्री स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय और अटल जी भी मिले। मैने गुरु जी के ही सम्मुख इन दोनों से

कहा—"भाई, तुम लोग कुछ करते नहीं हो। कुछ इसमें बल लगाओ।"

उन्होंने कहा—"महाराज जी, आजकल तो हम सब चुनाव में लगे है। हमारी तो प्रार्थना है, कि अब अनशन स्थगित कर दें। चुनाव के पश्चात् आप जो कहेंगे वह हम करेंगे।"

मैने हंसते हुए कहा—"तुम लोगों को खिला-खिलाकर इसीलिये मोटा किया है क्या कि समय पडने पर तुम कुछ भी न करो।"

यह सुनकर सभी लोग हंस पड़े। मैने गुरु जी से कहा—"आप भी अनशन छोड़ने को कहते हो क्या ?

उन्होंने कहा—मै अभी तो नही कहता, किन्तु अवसर आने पर मैं भी अवश्य कहूँगा।"

मैने अधिकारियों की मनोवृत्तिका भी पता लगाया उनकी भी मनोवृत्ति में कोई विशेष परिवर्तन का आभास प्रतीत नहीं हुआ। कार्यकर्ताओं में गोरक्षा की अपेक्षा चुनाव सम्बन्ध में विशेष अभिरुचि दृष्टिगोचर हुई, क्योकि चुनाव में कुछ ही दिन शेष थे। कोई बात बनती न देखकर मै मोटर द्वारा वृन्दावन आ गया।

जिस दिन मैं अपने वृन्दावन के उस पार के गोलोक से पकड़ लिया गया था, उसके दूसरे ही दिन मेरे अन्य अनशन करने वाले साथी उस पार से इस पार के वंशीवट संकीर्तन भवन आश्रम में आ गये थे और यही सबके सब श्री वंशीवट बिहारी गिरिधारी के मंदिर के सम्मुख अनशन कर रहे थे। उनके अनशन को १०-१५ दिन हो गये थे। मेरे आते ही सभी प्रेमी बन्धु जुट आये। मैने तो गोलोक में ही प्राण परित्याग का निश्चय कर लिया था, अतः सायंकाल को ही मैं गोलोक

चला गया। मेरे साथ ही अन्य जो १०-१२ अनशनकारी थे, वे भी इधर ही चले आये प्रबन्धक, सेवक, रक्षक पहरेदार सभी गोलोक में आ गये। एक महामहोत्सव सा ही हो गया।

देश भर के लोग सहानुभूति प्रकट करने आते, पूरे देश में हम लोगों की प्राण रक्षा के लिये स्थान-स्थान पर जप, पूजा, पाठ, यज्ञ अनुष्ठान हो रहे थे, ऐसी सूचनायें नित्य आतीं।

यद्यपि हम लोग अनशन कर रहे थे, किन्तु कार्यकर्ता और दर्शनार्थी तो वहाँ प्रचुर संख्या में रहते ही थे, नित्य अनेकों नर-नारी आते-जाते थे। अतः गोलोक में एक मेला-सा लगा रहता। भंडारा बन रहा है, लोग खा रहे हैं। गौओं का मनों दूध होता था, दिन भर चाय बनती रहती जो आता उसका चाय से सत्कार किया जाता।

उन दिनों गोलोक में मूलियाँ इतनी हुईं कि उनकी कोई सीमा नहीं। ३-३-४-४ सेर की एक मूली। खाने वाले कहते इतनी मीठी मूलियाँ थीं कि गरो के कच्चे गोले का सा स्वाद आता था। कढ़ाइयों भरकर साग बनता जिसके हाथ में देखो उसी के हाथ में मूली। जितनी खाई गयी उतनी खाली, न खायी गयी फेंक दी। बहुत से लोग तो मूली ही खाने को आते थे।

ठीक संख्या तो याद नहीं। अनशनकारी लगभग १०-१२ थे और सब तो पक्की कुटियों में रहते। उनके नीचे मोटे-मोटे पुआलों के गद्दे बिछे रहते। प्रारंभ में तो ओढ़ने का कष्ट रहा। पीछे जब लोगों को पता चला तो कृपालु भक्तों ने सेकड़ों कंबल, रजाइयाँ, गद्दे भिजवा दिये।

मैं तो अपनी नव निर्मित कच्ची कुटी में ही रहता। वह तत्-काल गोले गारे से बनी थी। महीनों यमुनाजी का पानी भरा रहा था, अतः नीचे से भी पानी निकलता था। एक प्रकार से

मेरी कुटिया बरफ की गुफा ही थी। उस कुटिया में चौबीसों घंटे अखंड भागवत् चरित का पाठ होता रहता। अखंड धूनी जलती रहती। उस छोटी कुटिया में ८-८ १०-१० आदमी रात्रि में रहते। मेरी सेवा में जो दो चार लड़के रहते उनमें से कोई मेरे तखत के नीचे सोता कोई कहीं गुड़-मुड़ी मारे पड़ा रहता। सबसे अधिक परिश्रम तो लड़कों का था। मै तो चुप-चाप पड़ा रहता ये लड़के तो दिन भर भाग-दौड़ का कार्य करते, रात्रि में जागते थे। कैसे थे वे दिवस, अब उनकी स्मृति आती है तो हृदय में मीठी-मीठी हूक उठती है। दिन में मेरा तरुत धूप में डाल दिया जाता, मै दिन भर धूप में पडा रहता। दिन भर दर्शनार्थियों का तांता लगा रहता।

जैसा कि अनशन वाले करते हैं, गरम जल में नींबू का रस और पानी मिलाकर पीते हैं। हमारे सभी साथी ऐसा ही गरम जल पीते थे। मैने नीबू नमक पड़ा गरम जल भी लेना स्वीकार नही किया। एक मेरे साथी पाहूजा भी गरम जल नही लेते थे। हम दो को छोड़कर सब गरम किया हुआ नीबू नमक का जल पीते थे उनके लिये जल तैयार करना उन्हें उठाना बिठाना न्हिलाना घुमाना आदि सब कार्य भक्त लोग बड़ी तत्परता से करते।

कुछ न खाने से मुझे प्यास बिलकुल नहीं लगती थी। जाड़े के दिन, बरफ की कुटी में निवास, इस कारण पानी पीने की इच्छा ही न होती थी। गोलोक में वृन्दावन से बहुत अधिक जाडा पडता था। क्योंकि वह यमुनाजी के गर्भ में है और यमुनाजी वहाँ से अभी-अभी हटीं थीं। सामान्य दिनों में भी वैशाख ज्येष्ठ में वहाँ रजाई ओढ़कर सोना पड़ता है। बिना प्यास के मै पानी पी जाता, वह तनिक भी देर पेट में नहीं रहने पाता, तुरन्त वमन करके मै पानी को निकाल देता।

पैरों में झुनझुन वात पहिले ही से थी, फिर कच्ची भीगी कुटी में सोने से रग-रग में जाड़ा व्याप गया था, दिन भर धूप में पड़े रहने पर भी जाड़ा नहीं जाता था। कुटिया के भीतर लकड़ी कंडे जलते रहते और बाहर कोयलों की सिगड़ी जलती रहती।

कुछ न खाने से शौच तो होता ही नहीं था, फिर भी दोनों समय शौच जाता था, कभी-कभी एक दो गाँठ निकल भी जाती। शौचालय में जाता तो वहाँ भी कोयलों की जलती हुई सिगड़ी ले जाता। शरीर अत्यंत कृश हो गया था, फिर भी साहस करके दूर शौचालय में चला जाता। मरने का तो निश्चय कर ही लिया था, अत: शरीर के प्रति तनिक भी ममता नहीं रह गयी थी। इसी प्रतीक्षा में था, कि कब शरीर छूट जाय।

रात्रि में निद्रा बहुत कम आती थी, शरीर में पीड़ा भी रहती थी, किन्तु कभी भी भूल कर भी मै अपनी व्यथा को व्यक्त न होने देता। हर समय हँसता रहता। सेकड़ों नर-नारी जो प्रतिक्षण मेरा मुख जोहते रहते उनके सम्मुख मैं अपनी व्यथा कैसे व्यक्त करूँ। यह प्रतिष्ठा ऐसी बुरी वस्तु है, कि इसकी रक्षा के लिये अपने भावों का गोपन करना ही पड़ता है।

एक मंडलेश्वर थे। गुजरात के किसी बड़े नगर में बड़े आदमी के घर में ऊपर की मंजिल में ठहरे हुए थे। नित्य दूसरे स्थान पर प्रवचन करने जाया करते थे। एक दिन प्रवचन करने को दूसरी मंजिल से नीचे उतर रहे थे, पैर फिसल गया। नीचे गिर पड़े कूल्हे की हड्डी टूट गयी। हड्डी टूटने पर महान कष्ट होता है, किन्तु भक्तों के सम्मुख प्रकट करते हैं, तो प्रतिष्ठा जाती है। उस कष्ट को सहन करके मोटर में बैठ गये। जाकर सभा में प्रवचन किया। फिर अस्पताल गये। हड्डी जुड़ने में दो महीने लगे। दो

महीने तक अस्पताल में पड़े रहे। प्रतिष्ठित हो जाने पर सबका ध्यान रखना पड़ता है।

मनुष्य जब तक किसी बात पर दृढ़ रहता है तब तक उसे कोई असुविधा नहीं प्रतीत होती। जहां उसकी दृढ़ता में तनिक भी ढिलाई आई नहीं कि असुविधा ही असुविधा दिखायी देती है। जो आदमी दिन में चार बार खाता है, वह यदि निर्जला एकादशी को प्रतीज्ञा कर लेता है, कि आज न मैं कुछ खाऊंगा और न जल ही पीऊंगा, तो उसकी दृढ़ता के कारण उसे न भूख लगती है और न प्यास ही। जहां तनिक सी शिथिलता आ गयी, तो सोचते है—थोड़ा सा दूध पी लेने में क्या हानि है।

दूध पीने बैठते है, तो फिर थोड़ा-सा नहीं पिया जाता। यही तो मनुष्य की दुर्बलता है। एक दिन मैं शौचालय में गया। सामने दहकते हुए कोयलों की अंगीठी रखी थी, मै अपने को सम्हाल न सका, अंगीठी में ही गिर गया। कई स्थानो में जल गया, किन्तु मैने किसी से इस बात को बताया ही नहीं। शरीर में रक्त तो था ही नहीं अतः घाव शीघ्र ही सूख गये।

तेंतीस या चौंतीस दिन हो गये। शरीर अत्यत निर्बल हो गया था, पानी की एक बूंद भी पेट में नहीं रह सकती थी, शरीर की नस-नस में सरदी बैठ गयी थी। रात्रि में नींद क्षण भर को भी नही आती। तीन रात्रियां मैंने निरंतर जागकर किस प्रकार बितायीं, इसे भगवान् के और मेरे अतिरिक्त कोई तीसरा आज तक नही जान सका है। मैं अपनी व्यथा को किसी पर प्रकट करता हूँ, तो ये लड़के क्या कहेंगे।

अब मुझे ठीक-ठीक तो याद नहीं है, मेरे अनशन का ३५ वां या ३६ वां दिन था। तीन चार दिन से क्षण भर को निद्रा नहीं आती थी। रात्रि भर क्या-क्या सोचता रहता था, उन विचारों को

लिखने बैठूँ, तो एक बड़ा भारी पोथा बन जाय। राधेश्याम मेरे पास ही सोता था। समीप ही भागवत चरित का अखंड पाठ होता रहता था, पाठ सुनते-सुनते ही पूरी रात्रि व्यतीत हो जाती।

रात्रि के बारह बजे होंगे, हृदय में अत्यन्त ही व्यथा होने लगी। जब व्यथा असह्य हो गयी, तो मैंने राधेश्याम को जगाया। और धीरे से कहा—मेरा सिर फटा जा रहा है, उसने मेरे सिर को गोदी में रखा और शनैः शनैः दबाने लगा। मुझे प्रतीत हुआ मृत्यु आ गयी।

मैंने मरते हुए आदमियों को देखा है, मेरे एक साथी थे, जगत्प्रकाश ब्रह्मचारी। झूसी आश्रम की समस्त देखभाल वे ही किया करते थे। मृत्यु के समय मैं उनके पास ही बैठा रहा। मेरी गोदी में सिर रखकर ही उन्होंने प्राणों का परित्याग किया था। आयुर्वेद के पठन का मुझे चिरकाल से व्यसन है। ३००-४०० आयुर्वेद के ग्रन्थ मेरे पास है। मैं निरन्तर उनकी हाथ की तथा पैरो की नाड़ियों को देखता रहा। सबसे पहिले उनके पैर निर्जीव हुए। परों में से प्राण निकले, फिर जघा निर्जीव हुई; फिर उदर तब, उनकी आँखें फट गयी। हंसा उड़ गया।

मुझे भी अनुभव हुआ, अब मृत्यु समीप आ गयी। पैरों को देखा, वे बरफ की भाँति ठंडे पड़ गये थे। वे निर्जीव हो गये थे, अपने आप मैं हिला-डुला नहीं सकता था। मैं चाहता था, रात्रि में मेरी मृत्यु न हो। बार-बार पूछता, अब के बजे हैं, के बजे हैं। मैं सोचता था। उषाकाल भी हो जाय, चार बजे भी मृत्यु हो, तो अच्छा है। शनैः शनैः १-२-३ और चार बज गये। लोग जागने लगे, इधर-उधर टहलने लगे। पैर तो निर्जीव हो ही गये थे, घुटनों तक निर्जीवता आ गयी। तब मैंने सबको जगाने को कहा। सब दौड़े-दौड़े मेरे पास आये। भगवान् का सिंहासन

मेरे तखते से सटा ही था। उसके सामने पूजा का छोटा सा कच्चा चबूतरा था। मैंने कहा—गौ के गोबर से चबूतरे को लीपो। तुरन्त चबूतरा लीपा गया। मैंने कहा—इस पर पुआलका गद्दा कुशा का आसन बिछाओ। आसन विछ जाने पर मैंने कहा—मुझे कुशाओं के आसन पर लिटा दो।" तुरन्त दो तीन लड़को ने लिटा दिया। भगवान् शालग्राम को मैंने छाती पर रखा। तुलसी की माला धारण की फिर सोचा—मेरे मन में कोई वासना तो नही है, किसी वस्तु में ममता तो नहीं है। अन्तःकरण को टटोला। कोई इच्छा प्रतीत न हुई। तब मैंने कहा—सबको बुला लो। "सुनते ही सब लाग आ गये। कुटिया छोटी थी, आदमी बहुत। अभी अंधेरा था। मैंने कहा—गौ माता को लाओ।" तुरन्त काली गौ लाई गयी आते ही उसने गोबर किया मूत्र किया। यह तो शुभ लक्षण है।

बहुत सी बच्चियाँ बच्चे रोने लगे, मैंने कहा—"देखो, कोई रोना मत, सब आकर एक-एक करके प्रणाम कर जाओ और भगवान् के नामों का कीर्तन करो।" सबने बल पूर्वक आँसुओं को रोका। रोते-रोते सब कीर्तन करने लगे।

मैं सोच रहा था, घुटनों तक तो शरीर निर्जीव हो ही गया है, सूर्य निकलते-निकलते शरीर समाप्त हो जायगा। अभी सूर्य निकला भी नहीं था, कि मथुरा तथा वृन्दावन से नर-नारियों की भीड़ आनी आरम्भ हो गयी मुझे आश्चर्य हो रहा था, कि इतनी ही देर में मथुरा तक यह बात कैसे पहुँच गयी। अभी तो इस कुटी के बाहर भी लोगों को पता नहीं चला।

इस विषय में छत्रपति शिवाजी की एक कथा है। छत्रपति शिवजी को उनके पुत्र शंभाजी के सहित औरंगजेब ने अपने

देहली के किले में वन्दी वना लिया। वहाँ उनको समस्त सुविधायें थीं। जो चाहें सो करें, किन्तु बाहर नहीं जा सकते।

एक दिन कोई बड़ा पर्व आया। छत्रपति ने औरंगजेब से अनुमति माँगी, कि "आज मै कुछ दान पुण्य करना चाहता हूँ, ब्राह्मणों को भिक्षुकों को दीन-दुखियों को मिठाई बाँटना चाहता हूँ।"

औरगजेव ने कहा—"चाहें जितना दान धर्म कीजिये चाहें जितनी मिठाई बाँटिये।"

उसने मिठाइयाँ मँगाने का प्रवन्ध कर दिया। बड़े-बड़े टोकनों में मिठाइयाँ आने लगी। सैकड़ों सहस्रों ब्राह्मण, भिक्षुक, दीन दरिद्री लेने आने लगे। सेना का कड़ा पहरा था। आने-जाने वालों पर सैनिकों की कठोर दृष्टि थी।

मिठाई बाँटते-बाँटते सायंकाल हो गया। सायंकाल के समय छत्रपति शिवाजी और सभाजी ने अपनी-अपनी शैयाओ पर दो-दो लम्बे-लम्बे तकिया रखकर उन पर ऐसे चादरें उढ़ा दीं मानों दोनों सो रहे है और दोनों बाप बेटे मिठाइयों की एक-एक टोकनी में बैठकर बाहर निकल गये। पहरे वाले तो दिन भर मिठाइयो के टोकरों को आते-जाते देख ही रहे थे, अतः किसी ने संदेह नही किया।

योजना पहिले से ही बनी हुई थी। एक नौका तैयार खड़ी थी, उसमें रखकर टोकने यमुना के पार पहुँचाये। नौका को पारितोषिक देकर विदा किया। वहाँ दो बहुत ही वेगशाली कसे-कसाये घोड़े खड़े थे। बाप बेटे घोड़ों पर चढ़कर भाग निकले। रात्रि भर चलते रहें। प्रातः काल अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। अरुणोदय काल था। बाप बेटाओं ने देखा कुछ स्त्रियाँ कूए पर पानी भर रही हैं, वे आपस में बातें कर रही थीं—

"अरी बहिना ! छत्रपति शिवाजी तो औरंगजेब के कारावास से से निकल कर भाग गये।"

यह सुनकर आश्चर्य के साथ शंभाजी ने पूछा—"पिताजी ! हम लोग रात्रि भर घोड़ों को दौड़ाते हुए चले हैं। अब तक ५०-६० कोश चले आये होंगे। अभी तक तो देहली के किले में भी किसी को हमारे भागने का समाचार विदित न हुआ होगा, इन स्त्रियों को हमारे भागने का पता कैसे चल गया ?"

तब शिवाजी ने कहा—"भैया ! हम जो भागने का विचार कर रहे थे, वह विचार वायुमंडल में व्याप्त हो गया। वायु उसे उड़ाकर यहाँ तक ले आयी। वायु मंडल ही विचारों को प्रसारित करता है।"

इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मुझे दृष्टि गोचर हुआ। मथुरा वृन्दावन में हल्ला हो गया, ब्रह्मचारी जी की मृत्यु हो गयी। और सूर्योदय के पूर्व ही लोगों का ताँता लग गया।

सूर्योदय हो गया, किन्तु मेरे शरीर की शून्यता घुटनों से ऊपर न चढ़ी। घुटनों तक तो शरीर को कोई काट दे तो भी पता नहीं चलता। घुटनों से ऊपर सम्पूर्ण शरीर में जीवन था, मैं आदमियों को पहिचानता था, हँस-हँसकर बातें करता था। किन्तु उस समय तो मुझे अनुभव नहीं हुआ, अब अनुभव करता हूँ, कि इस अनशन का मेरे मस्तिष्क के ऊपर विपरीत प्रभाव पड़ा मस्तिष्क निर्बल बन गया, मैं अपने विचारों का सन्तुलन खो बैठा। मस्तिष्क में बड़े-बड़े विचार उठने लगे। अब तक तो मरने की ही बात सोचता रहता था। मृत्यु के स्वागत के लिये प्रस्तुत रहता। अब मस्तिष्क में अन्य ही भाव उठने लगे।

जीवन में इतना सोचने का समय पहिली ही बार मिला। नहीं तो बाल्य काल से अब तक मेरा सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय ही व्यतीत हुआ। जिस बात की भी धुनि लग जाय उसी के पीछे हाथ धोकर पड़ जाना यही मेरा अब तक कार्य रहा है। कभी मैं विना कुछ किये, विना व्यस्त रहे बैठा हूँ, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता। कभी ऐसा बीमार भी नहीं पड़ता कि चारपाई पर पड़ना पड़े। ये ही दिन ऐसे थे, जिनमें निष्क्रिय होकर चुपचाप पड़ा रहना पड़ता था। अब तक तो यही धुनि थी, कि जैसे हो तैसे, गोरक्षा हो, समस्त देश में अविलम्ब कानून से गोरक्षा हो जाय। अब सोचने लगा। मान लो कानून बन भी गया, तो सरकार मन से कानून तो बनावेगी नहीं दबाव से बनावेगी। उसमें कोई न कोई ऐसा छेद रख देगी, कि गोहत्या ज्यों की त्यों होती रहेगी। संविधान बनते समय राजेन्द्र बाबू तथा टन्डन जी आदि की हार्दिक इच्छा थी, कि स्वराज प्राप्ति के पहिले दिन ही गो हत्या बन्दी का कानून बन जाय, किन्तु नेहरू जी नहीं माने। संविधान ने गोहत्या बन्दी कानून को स्वीकार किया और हमें आशा थी, कि वर्ष दो वर्ष में देश से सदा के लिये गो हत्या बन्द हो जायगी। सभी यही सोचते थे। मध्य प्रदेश ने तो स्वराज होने के पश्चात् तुरन्त ही समस्त गोवंश की हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

हमारे कान तो तब खड़े हुए जब नेहरू जी ने कहा—"संविधान की मंशा सम्पूर्ण गोवंश के वध पर प्रतिबन्ध लगाने की नहीं है। वह तो उपयोगी पशुओं का वध रोकता है। उसे भी भारत सरकार नहीं बनावेगी। प्रान्तीय सरकारें चाहे तो कानून बना सकती हैं।"

जब हमने यह सोचा कि चलो, प्रत्येक प्रांत में सत्याग्रह

करेंगे। मंत्रीगण प्रायः सर्वत्र हिन्दू हैं, हिन्दू कोई कैसा भी क्यों न हो गोहत्या के विरोध में न जायगा। यही सोचकर हमने लखनऊ में सत्याग्रह किया और वहाँ भी मध्य प्रान्त की भाँति गो बछड़ा, बछड़ी, बैल साँड़ समस्त गो वंश के वध पर प्रतिबन्ध का कानून पास हो गया, तब तो नेहरू जी बड़े नाराज हो गये। तत्कालीन मुख्यमन्त्री स्वर्गीय बाबू सम्पूर्णानन्द जी को उन्होंने कानून बनाने पर बड़ी आलोचना की।

जब हमने बिहार में सत्याग्रह किया और वहाँ भी तुरन्त कानून बनाकर हमें कारावास से मुक्त कर दिया, तो हमने समझा यहाँ भी मध्य प्रदेश उत्तर प्रदेश की भाँति कानून बना होगा। किन्तु हमें पीछे पता चला वह तो भारत सरकार के दबाव से बहुत ही लँगड़ा कानून बना। उसमें गो हत्यारे पर मुकदमा पुलिस न चलावेगी, दूसरे लोग चाहें तो चला सकते हैं।

फिर कसाइयों से सर्वोच्च न्यायाल में अपील करा दी। सर्वोच्चन्यायालय ने निर्णय दिया संविधान के अनुसार गो बछड़े बछड़ियों पर प्रान्तीय सरकारें प्रतिबन्ध लगा सकती हैं, किन्तु अनुपयोगी बैलों और सांड़ों पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकतीं। उनका वध तो चालू रहेगा।" लीजिये साहब सब गुड़ गोबर हो गया हमारे यहाँ कहावत है "बिना इच्छा के मार पीट कर महरे मर बिठा भी दो तो होकरा तो नहीं दिवा लोगे।"

जब वर्तमान सरकार हृदय से गोबध के पक्ष में है, तो कानून बन जाने पर भी इसका पालन भी तो सरकार ही करावेगी। आज शारदा विवाह विधि रहने पर भी करोड़ों छोटी अवस्था के लड़के लड़कियों के खुल्लमखुल्ला विवाह हो रहे हैं।

सरकार न चाहेगी, वह उदासीन बनी रहेगी, तो केवल कानून बनने से भी हमारा प्रयोजन तो सिद्ध न होगा।

रही जनता की बात। आज से २५-३० वर्ष पूर्व तो एक भी हिन्दू ऐसा नहीं था जो गो वध का समर्थन कर सके। एक बार किसी ने पं० मोती लाल नेहरू जी से पूछा था—आप मांस तो खाते ही हैं। गोमांस खाने में क्या हानि, क्या आप गो मांस खा सकते हैं ?"

उन्होंने उत्तर दिया था—"मैं गो मांस तो खा नहीं सकता। हाँ जो गो मांस खाते हैं, उनके मांस को खा सकता हूँ।"

इस उत्तर में कितनी वेदना है, गो के प्रति कितना अटूट आदर है। मेरे सामने ही संसार भर का एक भी हिन्दू ऐसा नहीं था जो गोमांस से घृणा न करता हो किसी ने कह दिया—पं० जवाहर लाल नेहरू विदेशों में गो मांस खाते हैं। इस बात का हमारे किसी कार्य कर्ता ने सार्वजनिक सभा में उल्लेख कर दिया। जब हमारे गो हत्या निरोध समिति का शिष्ट मण्डल प्रयाग के आनन्द भवन में पं० जवाहर लाल नेहरू जी से मिलने गया, तब उन्होंने छूटते ही यह बात कही; कि आप लोग तो इस बात का प्रचार करते हैं, कि मैं गो मांस खाता हूँ।"

इस पर रज्जू भैया ने कहा—हम तो प्रचार नहीं करते कि आप खाते हैं। हाँ कुछ लोग संदेह करते हैं सो आप नहीं खाते तो इसका खंडन कर दें।

इससे भी यही प्रतीत होता था, कि नेहरूजी भी गो मांस खाने के पक्ष में तब खुलकर नहीं कहते थे। किन्तु आज वह भावना लुप्त हो गयी। बहुत से हिन्दु नामधारी, साम्यवादी 'कम्यूनिष्ट' खुल्लम खुल्ला लोक सभा में स्पष्ट कहने का साहस करते हैं, हम गो मांस खाते हैं, जिसे जो करना हो करले। मुसल-

मानों को प्रसन्न करने को जो हिन्दु नहीं भी खाते, वे खाने का समर्थन करते हैं। एक प्रकार से अधिकांश लोगों की गो मांस के प्रति जैसी कठोर घृणा थी, वह अब प्राय: जाती रही। पहिले गौ गुहार के नाम से कोई भी पुकार कर देता लाखों हिन्दु सब काम छोड़कर मरने मारने को तैयार हो जाते थे। सैकड़ों स्थानों पर गौ के नाम से झगड़े हुए। अनेकों लोगों को फाँसियां, काला पानी और आजन्म कैद की सजायें हुई। हमारे यहाँ झूसी में गौ के नाम से बड़ा भारी दंगा हुआ। बहुत से आदमी मारे गये। बहुतों को फांसी हुई जो मालवीयजी ने पूरी शक्ति लगाकर लाखों रूपये व्यय करके छुड़वाये कटारपुर आदि सैकड़ों स्थानों में ऐसे दंगे हुए। अब सर्वसाधारण में भी वैसी भावना नहीं रही। कोई गौ वध कर रहा हो, तो आँख बचाकर निकल जाते हैं। सोचते हैं कौन झगडों में पडे।

ये जो धनिक व्यपारी है, ये पहिले गौ रक्षा के प्रबल पक्ष पाती थे। गौ के लिये सर्वस्व बलिदान करने को उद्यत रहते थे। अब धनिकों में भी वैसी भावना नहीं रही। हिन्दु धनिक गौ बध करने वाले कसाइयों को व्याज पर रुपया देते है। अपने शीत गृहो में गौ मांस रखते हैं। गर्भवती गौ के पेट को चीर कर गर्भस्थ बच्चे के कोमल चर्म के गोसल्लों का, जीवित गौ के चर्म का, उन चर्म से बने जूते, बैग चप्पल आदि का व्यापार करते हैं, और हम जब गौ रक्षा समिति के लिये चंदा माँगने जाते हैं, तो हमें भी सौ पचास रुपये दे देते हैं। ऐसी भावना वाले धनिक व्यापारियों के बल पर गो रक्षा कैसे हो सकती है?

पहिले जनता अपनी रुचि से, धार्मिक और आर्थिक भावना से प्रेरित होकर गौओं का पालन करती थी। गौ हमारे जीवन की रीढ़ थी। गौ के बिना पहिले हमारा कोई काम चलता ही

नहीं था। जीवनोपयोगी इतने कामों के लिये गौ की आवश्यकता होती थी (१) धार्मिक कार्यों के लिये। जात कर्म संस्कार से लेकर मृतक संस्कार तक सभी में गौदान होता था। गौदान के बिना कोई धार्मिक कार्य सम्पन्न ही नहीं होता था। पंचामृत के बिना पूजा ही नहीं होती थी। आज प्रायः सभी संस्कार नष्ट हो गये। पूजा की भी लकीर पीटी जाती है। गो दान कौन करता है। कोई-कोई करते भी हैं तो सवा रुपया, सवापांच आना या पांच पैसा देकर ही गौदान की परम्परा को निभा लेते हैं। अतः धार्मिक कार्य भी गौ के बिना चल जाते हैं।

(२) दूसरे आयुर्वेद औषधियों के लिये गौ की अत्यंत आवश्यकता होती थी, क्यों कि वैद्यक के सिद्धान्तनुसार घृत का अर्थ गौघृत, दूध से केवल गो दूध और दधि से केवल गौ का ही दधि लिया जाता है। गोबर और गो मूत्र का भी औषधियों में बहुत उपयोग है। अब लोग आयुर्वेदीय औषधियों के स्थान में ऐलोपेथिक औषधियों से काम चलाने लगे हैं, जिसमें गौ की इन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं। अतः चिकित्सा का काम भी गौ के बिना चल ही रहा है।

(३) तीसरे पहिले गौ के घृत, दूध, दही, खोआ, रबड़ी तथा अन्यान्य खाने की मिठाईयों के लिये आवश्यकता होती थी। अब घृत के लिये तो धनिक व्यापारियों ने इतनी भारी-भारी करोड़ों रुपयों की भैंसे बना रखी हैं जो न घास भूसा खाती हैं न दाना चारा दूध के स्थान पर वे निरंतर घृत ही उगलती रहती है। अतः गौ घृत की आवश्यकता को डालडा पूरा कर रहा है। दूध दही भी बनावटी चल गया है। उसकी पूर्ति सूखे चूर्ण से बनो चाय कर रही है। अतः भोजन सामग्री भी गौ के बिना चल सकती है।

(४) गौ की चौथी आवश्यकता बैलों के लिये होती थी। बैलों से (१) खेत जोते जाते थे (२) पुरवट से पानी निकाला जाता था (३) बैलों की गाड़ियाँ सवारी तथा माल ढोने के काम में आती थी। (४) बैलों से ही अन्नों की दायँ चलायी जाती थी। अब खेत जोतने को ट्रैक्टर आ गये। पानी निकालने को ट्यूबेल लग गये। सवारी और माल ढोने को मोटर, ट्रक, ठेले, बसें हो गयी। दायँ चलाने अन्न निकालने को भाँति-भाँति की मशीने हो गयी। बैलो के बिना भी खेती हो सकती है हो रही है, अब तो कुछ थोड़े बहुत बैल दिखायी भी देते हैं। हमारी सरकार जिस तेजी से किसानों के यहाँ मशीनीकरण का प्रचार प्रसार कर रही है, यदि ऐसा ही प्रचार बना रहा तो बैल देखने को भी न मिलेगा।

(५) पाँचवे गौ बैलों की आवश्यकता खाद के लिये होती थी। चाहें कैसी भी अनुपयोगी गाय अथवा बैल हों वे सब गोबर की खाद तो देते ही थे। आज उसकी भी आवश्यकता नहीं। सर्वत्र अरबों रुपये लगाकर रासायनिक खाद बनाने के कारखाने लग रहे हैं, किसानों को हठपूर्वक वही खाद दी जा रही है, बताते हैं इससे उत्पादन दुगुना चौगुना दशगुना बढ़ जाता है। लोग तो सर्व प्रथम लाभ देखते हैं अतः गौ की खाद के बिना भी काम चल ही जाता है, चल ही रहा है।

जब ऐसी बात है, तो किसान गौ क्यों रखने लगा। वह तो वही काम करता है, जिससे उसे अधिक लाभ हो। अतः उसने गौओं को रखना बन्द कर दिया है। अधिक से अधिक दूध के लिये वह भैंस पालता है। गौ का आश्रय तो किसान ही था। कृषि और गोरक्षा का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जब किसान ने ही गौ को अपने यहाँ से निकाल दिया तो वह कहाँ रहेगी

हीं अब गो को एक आवश्यकता रही। अक्षत चावल से पूजा करने की। सो पूजा करने वाले भी कितने हैं। जो हैं भी वे अक्षत ही छोड़ना जानते हैं उनके आगे घास डालना नहीं चाहते मैंने सुना ३० गोएं कटने कलकत्ते जा रही हैं। मैं जाकर उन्हें कसाइयों से जैसे बना तैसे छुड़ा लाया। उन दिनों यमुना किनारे गो घाट पर हमारा उत्सव चल रहा था। मैं सोचता था, मैंने बड़ा भारी पराक्रम किया है गो भक्त जनता सुनेगी तो मेरी प्रशंसा करेगी हमारे उत्सवों में सहस्र-सहस्र नर नारी आते हैं एक-एक पैसा भी देंगे तो सहस्रों रुपये हो जायेंगे। मुट्ठी-मुट्ठी भर भी घास भूसा देंगे तो इनका पेट भर जायगा। पुरुषोत्तममास का महीने भर का उत्सव है, महीने भर यहीं रखेंगे। कैसी सुन्दर-सुन्दर गौएं हैं।"

ऐ महाराज! आप सत्य मानिये प्रातःकाल मैंने देखा त्रिवेणी स्नान करके स्त्रियां आवें घंटे में से तनिक जल फेंक दें। चार अक्षत चढ़ा दे तीन दिन यही दशा रही। किसी ने एक मुट्ठी घास लाकर नहीं दी। सब यही कहते—"ब्रह्मचारीजी ने बड़ा अच्छा काम किया, छुड़ा लाये, नहीं तो कट जातीं। बड़ा पुण्य का काम है।" पर उस पुण्य में वे सम्मिलित होना नहीं चाहती थीं गौएं बड़ी सुन्दर-सुन्दर दुधारू युवती थीं, बहुत सी गर्भवती थी। एक तो जिस दिन लाये उसी दिन ब्याइ पड़ी। उसका नाम हमने रखा वत्सला। चार अक्षतों से गौ के दिन जीवित रहती। तब मैं उन्हें भूसी आश्रम में ले आया, जहां किसी प्रकार उनका पालन करते रहे। ऐसे पूजा करने वाले गौओं को कसाइयो के हाथों से कैसे बचा सकते हैं।

हमारी वर्तमान सरकार आंख मींचकर पश्चिमीय देशों का अनुकरण कर रही है। उसकी समस्त पंचवर्षीय योजना गौ के

विरुद्ध हैं। वह सब काम बिजली और यन्त्रों से ही करा कर देश को समृद्धशाली बनाने का स्वप्न देख रही है। अरबों खरबों रुपये ऋण ले लेकर स्थान-स्थान से भीख माँग-माँग कर यह देश पर ऋण लाद रही है। इसके यहाँ गौ का कोई स्थान ही नहीं ? धर्म का कोई स्थान ही नहीं। इस सरकार से हम गोरक्षा की आशा कैसे कर सकते हैं ?

हम मर भी जायँ, तो सरकार के कानों में जूं भी न रेंगेगी। श्री श्यामा प्रसाद मुकर्जी मर गये कुछ नहीं हुआ। अनशन के भय से प्रान्तों को तो पृथक् कर सकती है, किन्तु अनशन के भय से यह सरकार गोहत्या बन्द कर दे यह कठिन है। क्योंकि इसकी समस्त कार्य प्रणाली वैचारिक शक्ति, कार्य पद्धति विशुद्ध पाश्चात्य ढंग की है। जिन देशों से यह दबी है, जिनकी ऋणिया है, उनमें से एक भी देश गोरक्षा के कानून बनाने के विरुद्ध है, उनके भय से भला यह कानून बनावेगी ? हमारे मरने से उन्हें प्रसन्नता ही होगी।

ऐसे अनेकों विचार मेरे मस्तिष्क में घूमने लगे। मेरा पागलपन बढ़ गया था। विचारों में संतुलन रहा नहीं था। प्रधान मंत्री तथा गृह मंत्री ने कई संदेशवाहक मेरे पास भेजे। उनमें से किसी में भी गोहत्या बन्दी का तनिक भी संकेत नहीं था, किसी प्रकार का आश्वासन नहीं था। बार-बार यही सन्देश आता। "पहिले अनशन समाप्त करो, तब विचार करेंगे।" यह तो थी सरकार की नीति अब हमारे साथी हमारे घर के लोग अपने को गोरक्षा आंदोलन का नेता समझने वालों का क्या विचार था और उस पर मेरी पागलपने में क्या प्रक्रिया थी इसका वर्णन आगे के अंक में करूँगा।

उस समय मैं जिस विषय पर भी सोचता उसी पर सोचता

ही जाता था। उनमें परस्पर में क्या सम्बन्ध है, यह मुझे ध्यान नहीं रहता।

उपनिषद में एक कथा है, शिष्य ने गुरु से पूछा—"ब्रह्म क्या है ?"

गुरु ने कहा—"तुम इतने दिन भोजन मत करो।"

शिष्य ने नियत समय तक अन्न त्याग दिया। अन्न त्यागने का सबसे प्रथम मस्तिष्क पर ही प्रभाव पड़ता है। लंबे अनशन में भी जिसका मस्तिष्क ठीक रहे, वह अतिमानुष महापुरुष ही होगा।

गुरु ने पूछा—"अमुक वेद की अमुक ऋचा का अर्थ बताओ।"

शिष्य ने कहा—गुरुजी मै तो सब कुछ भूल गया। मेरा मस्तिष्क काम नही करता।

तब गुरु ने कहा—"अन्नं वै ब्रह्म" अन्न ही ब्रह्म है।

सो अनशन में मेरा भी मस्तिष्क गड़बड़ा गया था। उसी का यह परिणाम है, कि आज उस प्रसङ्ग को लिखते समय मी मै भूल गया कि आवश्यकता से अधिक "भागवती कथा" का स्थान मैने तुच्छ अपनी निजी वार्ता में घेर लिया। अब विशेष पागल पन की बातें अगले अंक में।

छप्पय

पागल देउ बनाय जगत तैं नातो तोरूँ।
जग के नाते सकल एक तुमई तैं जोरूँ॥
त्यागी वेष बनाय नहीं तब पद पकरे हैं।
मान प्रतिष्ठा हेतु दंभ, छल, कपट करे हैं॥
अब अपनाओ अखिल पति, देखे जग के लोग सब।
अपनी धुनि में मस्त सब, लगे मोइ धुनि नाथ! तव॥

गीता-माहात्म्य

[१०]

दशम अध्याय

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ।।*
(श्री भाग० ११ स्क० १४ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

गीता को अध्याय दशम है योग विभूती ।
ताकी महिमा सुनी भक्ति अरु मोक्ष प्रसूती ।।
काशी में द्विज धीर-बुद्धि हर प्रिय विज्ञानी ।
भये विप्र अज हंस स्वयं शिव कही कहानी ।।
कृष्ण हंस-मम पद कमल, धरयो कथा अपनी कही ।
लांघी कमलिनि भयोसित, कमलिनि यों बोलति भई ।।

यह जीव संसार के पदार्थों में अनुरक्त बना रहता है, जो संसारी विषयों में आसक्त हैं, उन्हीं पुरुषों का नित्य संग भी करता है। जैसी संगति में रहेगा वैसी ही बात सीखेगा। विष-

---

* जो निरपेक्ष है, मननशील है, शान्त है, निर्वैर तथा समदर्शी है, उस महात्मा के पीछे-पीछे मैं इसलिये फिरता रहता हूँ, कि उसके चरणों की धूलि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।

यियों का संग करेगा, तो वहाँ दिन-रात्रि विषयों की ही चर्चा होती रहेगी । जैसी चर्चा निरन्तर सुनेगा मन भी उसी के अनुसार हो जायगा। मन तो श्वेत वस्त्र के सदृश है, उस पर जैसा रंग चढ़ाओगे वैसा ही रंग चढेगा । विषयियों के संग में रहने से मन विषयासक्त बन जायगा संतों के संग करने से अच्छी-अच्छी परमार्थ की बातें सुनने को मिलेंगी, उन्हें सुनते-सुनते सुनने वाले का मन भी परमार्थमय बन जायगा । इसलिये जिन्हें इस संसार-सागर से पार जाने की इच्छा हो, उन्हें दो काम करने चाहिये । पहिला काम तो यह कि उसे सदा सज्जन पुरुषों का ही संग करना चाहियेऔर दूसरा काम यह है, कि चाहे मन लगे न लगे भगवान् की कथाओं को सुनते ही रहना चाहिये जो धर्मशास्त्रों की कथा सुनने के लोलुप बन जाते हैं, उन्हे बहुत से तीर्थों में भटकने की आवश्यकता नही रहती । गगा यमुना, सरस्वती तथा समस्त तीर्थ वहीं आ जाते हैं, जहाँ भगवान् की कथा होती है । वायु पुराण के माघ माहत्म्य में इस सम्बन्ध की एक कथा आती है । प्राचीन काल में बृहत्तपा नाम के एक मुनि थे । वे गंगाजी से दो कोस की दूरी पर सत्यव्रत नाम के ग्राम में वास करते थे, उन्होंने अंधे महर्षि दीर्घतमा को सौ वर्ष पर्यन्त कथा सुनायी थी । उनकी कथा सुनने पुण्यधामा ब्राह्मण भी आते थे । उन्हें कथा सुनने का ऐसा व्यसन लग गया कि दो कोस पर गंगाजी रहने पर भी कभी गंगा स्नान के लिये नहीं गये । शीघ्रता से तीनों काल की सन्ध्या कर लेते और केवल तीनों काल १०-१० बार गायत्री जप कर लेते । शेष सभी समय कथा सुनते रहते । जो उनके द्वार पर अतिथि आ जाते उनका भी वे श्रद्धा से स्वागत सत्कार करते । दो ही काम वे करते । भागवती कथा श्रवण और अतिथि सत्कार ।

एक दिन दो महात्मा पधारे। पुण्यधामा मुनि ने उनका यथोचित आतिथ्य किया। जब परस्पर में चर्चा चली तब उन महात्माओं ने पूछा—"गंगाजी यहाँ से कितनी दूर हैं ?"

पुण्यधामा मुनि ने कहा—"महाराज, ऐसा सुनते हैं यहाँ से दो कोस पूर्व में गंगाजी हैं, मैं तो कभी गया नहीं।"

यह सुनकर वे महात्मा बड़े क्रुद्ध हुए और बोले—"तू बड़ा नीच है, इतनी समीप गंगाजी होने पर भी तू स्नान को नहीं जाता। जा हम तेरे यहाँ नहीं रहेंगे।" ऐसे क्रुद्ध होकर वे महात्मा गंगा तट पर चले आये, किन्तु उन्होंने देखा गंगाजी में एक बूंद भी जल नहीं है। वे गंगोत्री से गंगा सागर पर्यन्त घूमे किन्तु उन्हें गंगा जल के दर्शन नहीं हुए। काशी में आकार उन्होंने रो-रो कर विनीत भाव से गंगा जल के दर्शन न होने का कारण जानना चाहा। तब गंगाजी स्वयं साक्षात् अपने स्वरूप से प्रकट हुईं और बोलीं—"देखो, तुमने कथा प्रेमी पुण्यधामा मुनि का अपमान किया है, यह उसी का परिणाम है। देखो जिसका सम्पूर्ण समय हरि कथा श्रवण मनन में बीतता है, उसकी पादरेणु के लिये तो बड़े-बड़े तीर्थ अभिलाषा करते हैं। मैं स्वयं उन महात्मा की चरण धूलि के लिये लालायित रहती हूँ। आप उन मुनि के समीप जाकर क्षमा प्रार्थना करो।"

गंगाजी की आज्ञा से वे महात्मा उन पुण्यधामा मुनि के समीप गये और जब उनसे क्षमा याचना करली, तब उन्हें गंगा-जल के दर्शन हुए। सो, जो भागवत, गीता तथा अन्यान्य धर्म-शास्त्रों के स्वाध्याय में संलग्न रहता है, उसके पीछे-पीछे तो भगवान् फिरते रहते हैं। ऐसे महात्मा का समस्त उत्तरदायित्व भगवान् अपने सिर के ऊपर ले लेते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! अब मैं आपको श्रीमद्भगवद्

गीता के दशम अध्याय का माहात्म्य सुनाता हूँ। जिसे भगवान् विष्णु ने अपनी प्रियतमा लक्ष्मी को तथा शिवजी ने अपनी प्राणप्रिया पार्वती जी को सुनाया था।

पार्वतीजी के पूछने पर शिवजी ने कहा—प्रिये ! मैं तुम्हें अब श्रीमद्‌भगवत् गीताजी के दशम अध्याय का माहात्म्य सुनाता हूँ। यह बहुत ही अद्‌भुत माहात्म्य है।

मुक्तिप्रदा काशीपुरी में शान्त दान्त तितिक्षु सर्वशास्त्र पारंगत धीरबुद्धि नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसने तपस्या द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा था। वह बाल ब्रह्मचारी सत्य परायण तथा परम भगवत् भक्त था। उसका अन्तःकरण निर्मल था, वह अपने मन को सदा भगवान् में ही लगाये रहता और आत्मतत्त्व का साक्षात्कार किया करता था। उसे अपने शरीर की सुधि-बुधि भी नहीं रहती। अतः मैं सदा सर्वदा प्रेम के वशीभूत होकर उसके पीछे-पीछे चला करता था। मैं सब प्रकार से उसकी सार सम्हाल रखता। उसके योगक्षेम का निरन्तर ध्यान रखता। उसके प्रति मेरी ऐसी आसक्ति देखकर मेरे गणों में जो श्रेष्ठ पार्षद भृङ्गिरिटि है उसने पूछा—"प्रभो ! इस धीरबुद्धि ब्राह्मण में ऐसी कौन-सी विशेषता है, जो आप इसका इतना ध्यान रखते है। सदा इसके पीछे-पीछे चलते है, निरन्तर इसकी सार सम्हाल करते रहते हैं। बड़े-बड़े योगी महर्षि लाखों वर्षों तक घोर तपस्या करते है, फिर भी वे आपके दर्शन तक नहीं प्राप्त कर सकते। इस ब्राह्मण ने ऐसा कौन-सा जप, तप, यज्ञानुष्ठान तथा पुण्य कर्म किया है कि आप पग-पग पर इसे अपने हाथ का सहारा देते रहते हैं ?"

यह सुनकर करुणा के सागर शिव जी गम्भीर हो गये और बड़ी ही स्नेहयुक्त वाणी में बोले—भृङ्गिरिटि का तुमने यह बहुत

ही सुन्दर प्रश्न किया। तुम मेरे पार्षदों में श्रेष्ठ हो, अतः मैं तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर दूंगा। मैं इस ब्राह्मण के प्रेम के वशीभूत होकर इसके पीछे दौड़-दौड़कर जो इसे सदा सर्वदा हाथ का सहारा देता रहता हूँ, इस विषय का एक बडा ही दिव्य इतिहास है, उसे तुम दत्त चित्त होकर श्रवण करो।

मेरा कैलास पर्वत सदा हरा भरा बना रहता है, वहाँ बारहों महीने बसंत का जैसा समय रहता है। वहाँ सदा ही सबको सुख देने वाली शीतल, मंद सुगन्धित वायु बहती रहती है। मेरे वट के पार्श्व भाग में पुन्नाग नाम का वन है। जिसमें पुन्नाग के पुष्प सदा फूलते रहते है। एक दिन मै एक वृक्ष के सहारे सुंदर वेदी पर बैठा हुआ था, उसी समय वहाँ बड़े बेग की आँधी आयी, वृक्ष हिलने लगे, शाखायें टूटने लगी, विजली चमकने लगी, रिमझिम-रिमझिम करके बूंदे पड़ने लगीं। उसी समय एक भयंकर शब्द हुआ। और एक कृष्ण वर्ण का विशाल पक्षी आकाश से उतर कर मेरे चरणों के समीप गिर पड़ा और एक कमल उसने मेरे चरणों में समर्पित किया। तदनन्तर उसने बड़े ही कोमल स्वर में स्पष्ट अक्षरों मे मेरी दिव्य स्तुति की।

उसकी दिव्य स्तुति सुनकर मैं परम प्रसन्न हुआ, मैंने पूछा—'पक्षिराज! तुम कौन हो? मुझसे तुम क्या चाहते हो? देखने में तो तुम्हारी आकृति दिव्य हंस के सदृश है, किन्तु तुम्हारा वर्ण काला कैसे हो गया है, किस अपराध से तुम हंस होकर कृष्णता को प्राप्त हुए हो? यदि कोई न कहने योग्य बात न हो तो मुझे तुम इसका कारण बताओ?"

मेरी बात सुनकर हंस कहने लगा—"प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, सर्वान्तिर्यामी हैं, घट-घट की जानने वाले हैं। आपसे कोई अविदित नहीं है। आप भूत, भविष्य तथा वर्तमान की

घटनाओं से परिचित हैं फिर भी जब आप मुझसे पूछ ही रहे हैं तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मै अपना समस्त वृत्तान्त बताता हूँ। आप मुझे ब्रह्माजी का वाहन श्वेत हंस ही जानें।

मैंने पूछा—हे पक्षी! ब्रह्माजी के दिव्य हंस होकर भी तुम्हारी यह दुर्दशा किस कारण हुई?

हंस बोला—"प्रभो! उसी घटना को तो मै बता रहा हूँ।" एक दिन मैं उड़ते-उड़ते पृथ्वी पर आ गया। पृथ्वी पर समृद्ध शाली एक सौराष्ट्र प्रदेश है। उस प्रदेश में एक बड़ा ही सुंदर स्वच्छ सलिल वाला शोभायमान सरोवर है। उसमें कमल लहलहा रहे थे, श्वेत मृणालों से वह व्याप्त था, मैं उस सरोवर में उतरा। श्वेतमृणालों के ग्रास लेकर मैं शीघ्रता के साथ पुनः आकाश में उड़ने लगा। किन्तु अधिक उड़ न सका, उडते-उड़ते मैं धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा और संज्ञाशून्य बन गया। कुछ काल में चेतना होने पर मुझे बडा आश्चर्य हुआ कि किस कारण मेरी गति अवरुद्ध हो गयी, क्यों मै उड़ते-उडते भूमि पर गिर पडा। जब मैंने अपने शरीर की ओर देखा तो मैं आश्चर्य चकित रह गया, जो मेरा सुंदर शरीर कपूर के सदृश स्वच्छ सुघड तथा श्वेत था वह कृष्ण वर्ण का बन गया था। मैं इस परिवर्तन का कोई कारण समझ ही न सका। चारों ओर चकित-चकित दृष्टि से मैं देखने लगा। उसी समय सरोवर में से एक वीणा विनिन्दित् सुमधुर शब्द सुनायी पड़ा। कमलों के मध्य में से कोई नारी सुलभ कोमल मधुर वाणी कह रही थी—"हंस! तुम विस्मित मत होओ। मेरे समीप आओ, मैं तुम्हारे कृष्ण वर्ण बनने का तथा आकाश से गिरने का कारण सुनाती हूँ, मेरी बात को सावधानी के साथ श्रवण करो।"

कमल कोष के मध्य से ऐसा कमनीय कोमल शब्द सुनकर

में विस्मित हुआ और उन कमलों के समीप गया। वहाँ मैं क्या देखता हूँ कि पाँच कमलों के मध्य में एक मनमोहिनी कमलिनी खिल रही है और वह वाणी उसी कमलिनी में से आ रही है। मैंने उस कमलिनी को प्रणाम किया, उसकी प्रदक्षिणा की और हाथ जोड कर कहा—"इस कमलिनी को जो अधिष्ठातृ देवी हों, वे मुझे गिरने का तथा कृष्ण वर्ण होने का कारण बतावें।"

तब उस कमलिनी ने ही कहना आरंभ किया—"पक्षिराज! कल हंस! मैं जो कुछ कहती हूँ उसे तुम सावधानी के साथ सुनो। मै तुम्हें अपने तीन जन्मो की कहानी सुनाती हूँ। इस जन्म से तीसरे जन्म मे मे एक ब्राह्मण कन्या थी, मेरा नाम था सरोजवादना। पिता ने मेरा विवाह एक सदाचारी कर्तव्य परायण किसी विप्र-कुमार से कर दिया। मैं पातिव्रत का पालन करते हुए सदा पति सेवा में निरत रहती। किन्तु मेरा एक सारिका (मैंना) में अत्यन्त ही अनुराग हो गया। मैं सदा उस सारिका को पढ़ाया करती, उसे खिलाती पिलाती तथा उसके साथ खेलती रहती। मेरे पति को यह अच्छा नहीं लगता। उन्होंने कई बार मना भी किया, किन्तु मुझे वह सारिका इतनी प्यारी थी, कि मैं उसे छोड़ न सकी। इससे पति सेवा में विलम्ब भी हो जाता। एक दिन इस बात से कुपित होकर मेरे समर्थ पति ने मुझे शाप दिया, कि तेरी सारिका में अत्यधिक आसक्ति है, अतः जा तू भी सारिका हो जा।"

समर्थ पति का शाप फली भूत हुआ, मैं दूसरे जन्म में सारिका हो गयी। किन्तु मैने सदाचार का पालन किया था, इस कारण ब्रह्मवादी ब्राह्मणों के परिवार में मुझे आश्रय मिला। किसी परम सुशीला सदाचार सम्पन्ना मुनि कन्या ने मेरा पालन पोषण किया।

वह मुनि कन्या मुझे अत्यधिक प्यार करती और प्रेम पूर्वक शास्त्रीय श्लोक पढ़ाती रहती। जिन ब्राह्मण के घर में मैं थी वे नित्य नियम से श्रीमद्भगवत्गीता के दशम अध्याय विभूति योग का पाठ किया करते। पाठ सुनते-सुनते मुझे भी दशम अध्याय कंठस्थ हो गया और मैं भी निरंतर उसका पाठ करती रहती। एक दिन में कितने पाठ हो जाते मुझे पता ही नहीं चलता। उस पाठ से मुझे भी सुख मिलता और मेरे मुख से जो भी सुनते वे भी परम प्रमुदित होते।

समयानुसार मेरी मृत्यु हुई। श्रीमद्भगवद् गीता के दशम अध्याय के श्रवण तथा पाठ के कारण स्वर्ग में जाकर मैं परम सुन्दरी अप्सरा बनी। वहाँ मेरा नाम पद्मावती पड़ा और पद्मा की प्यारी सखी हो गयी। अब मैं स्वर्ग में स्वर्गीय सुखों का उपयोग करती, स्वर्ग के नन्दनादि उपवनों में स्वच्छन्द विचरती, तथा विमानों पर चढ़कर यथेच्छ विहार करती।

एक दिन विमान में चढ़कर मैं घूम रही थी, घूमते-घूमते इस सरोवर के निकट आयी। पद्मों से भरे इस कांच के सदृश स्वच्छ जल वाले सरोवर को देखकर मेरी इच्छा इसमें क्रीड़ा करने की हुई। मैंने अपने समस्त वस्त्र उतार दिये और नग्न होकर कमलों के मध्य में जल में विहार करने लगी।

मैं स्वच्छन्द होकर विहार कर ही रही थी, कि इतने ही में महाक्रोधी दुर्वासा मुनि वहाँ आ पहुँचे। मैं जानती थी ये महा-मुनि महाक्रोधी हैं, जल में नग्न होकर क्रीड़ा करते देखकर अवश्य ही ये मुझे शाप देंगे। अतः मैंने स्वयं ही कमलिनी का रूप धारण कर लिया मेरे दोनों पैर दो सुन्दर कमल बन गये दोनों हाथ भी दो कमल हो गये। शेष अंगों के सहित मेरा मुख कमलिनी बन गया। इस प्रकार इच्छारूप धारिणी अप्सरा मैं

कमलों के बीच छिप गयी। किन्तु दुर्वासा मुनि तो शाप की पोटली सिर पर लादे घूमते ही रहते हैं, वे बिना शाप दिये किसी को छोड़ते ही नहीं। उनकी पैनी दृष्टि से मैं बच नहीं सकी। उन्होंने मुझे नग्नावस्था में भी देख लिया था और अब जब मैं कमलिनी बनकर कमलों के बीच में छिप गयी, थी, तब भी उन्होंने देख लिया। अतः क्रोध में भरकर उन्होंने मुझे शाप दिया—"दुष्टे ! तू मेरी अवहेलना करती है, जा सौ वर्ष पर्यन्त तू इसी रूप से इस सरोवर में पड़ी रह।" ऐसा शाप देकर मुनि चले गये। मैं कमलिनी के रूप में तो हो गयी, किन्तु मेरी वाक्शक्ति नष्ट नहीं हुई। क्योंकि मैंने सारिका जन्म में श्रीमद्भगवत्गीता के दशमाध्याय का निरन्तर पाठ किया था। अब भी में बराबर उसी का मनन करती रहती हूँ आप मुझे लांघकर जा रहे थे, इसीलिये आप गगन से गिर पड़े और इसी पाप से आपका वर्ण काला हो गया। संयोग की ही बात है, आज ही मेरे शाप का अन्त होने वाला है, आज ही मुझे पूरे सौ वर्ष यहाँ सरोवर में रहते हुए हो गये। आज ही मैं आपके सामने अपने अप्सरा रूप को प्राप्त होऊंगी। आज में सर्वप्रथम तुमसे ही बोली हूँ। जब मैं इस मध्यम कमल द्वारा तुमसे बोलने लगी, उस समय मेरे मुख से निकली सुगन्धि को सूंघकर साठ सहस्र भौरें स्वर्ग को प्राप्त हो गये। तुम्हें भूमि पर गिरा देखकर मेरे हृदय में करुणा उत्पन्न हो गयी। करुणा के वशीभूत होकर ही मैंने तुमसे बातें की। अब तुम मुझे से श्रीमद्भगवत् गीता के दशवें अध्याय को और सुनलो। उसे सुनते ही तुम मुक्ति के अधिकारी बन जाओगे।"

हंस शिवजी से कह रहा है—सो, प्रभो ! उसी समय कमलों के बीच में से निकल कर वह अप्सरा प्रकट हुई। उसने विधिवत्

दशम अध्याय का पाठ किया, मुझे सुनाया। वह तो पाठ करते ही तुरन्त मुक्त हो गयी। मैं उस सरोवर से कमल लाकर आपके चरणों की शरण में आ गया हूँ। अब आप मेरी रक्षा करें, मुझ शरणागत के ऊपर आप अपनी कृपा दृष्टि की सदा वृष्टि करते रहें। इतना कहकर उस हंस ने वहीं मेरे चरणों की सन्निधि में अपना शरीर त्याग दिया।

भगवान् भोलेनाथ शिवशंकर जी अपने परम प्रिय पार्षद भृङ्गिरिटि से कह रहे हैं—"सो, वत्स ! वही हंस यहाँ काशी में आकर धीरबुद्धि नाम से उत्तम ब्राह्मण हुआ। बाल्यकाल से इसके मुख से सदा सर्वदा श्रीमद्भगवत् गीता के दशवें अध्याय का उच्चारण होता रहता था। और यह निरन्तर दशवें अध्याय के श्लोकों का अर्थ चिंतन करता रहता था। निरन्तर के अर्थ चिन्तन का यह परिणाम हुआ कि इसे शंख चक्र गदा पद्मधारी भगवान् वासुदेव का निरन्तर दर्शन होता रहता। यह अपने पाठ और स्मरण के कारण इतना पावन बन गया है, कि जिसके ऊपर भी इसकी स्नेह भरी दृष्टि पड़ जाती है, वह कैसा भी पातकी क्यों न हो परम पावन बन जाता है। पूर्वजन्मकृत पुण्य पाठ के प्रभाव से यह प्राणियों के लिये परम पावन प्रेममय बन गया है। यह भगवत् ध्यान में इतना निमग्न रहता है कि इसे अपने शरीर की सुधि-बुधि नहीं रहती। इसीलिये जब यह मार्ग में चलने लगता है, तो मैं इसे अपने हाथ का सहारा देता रहता हूँ, सदा सावधानी के साथ इसके पीछे-पीछे चलता हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"सुनियो ! इस प्रकार भगवान् शिव ने पार्वतीजी के पूछने पर अपना भृङ्गिरिटि का जो काशी में हुआ सम्वाद था, उसे सुनाया। चाहें नर हो या नारी जो इस श्रीमद्-भगवत् गीता के दशम अध्याय का प्रेम पूर्वक पाठ करेगा और

इसके श्लोकों का अर्थ चिन्तन करेगा, उसे सभी आश्रमों के पालन करने का फल मिल जायगा। वह संसार सागर से सदा के लिये पार हो जायगा। यह मैंने दशवें अध्याय का माहात्म्य सुनाया अब ग्यारहवें विश्वरूप दर्शनयोग नाम के अध्याय का माहात्म्य आगे सुनाऊँगा।

छप्पय

हती सती पति शाप पाइ हौं मैंना द्विज घर।
गीता दशमध्याय याद करि पहुँची सुरपुर॥
बनी अपसरा नग्न न्हात लखि शाप दयो मुनि।
बनी कमलिनी आज शाप को अन्त भयो पुनि॥
कह्यो हंस तैं भव तरो, पाठ दशम यदि नित करें।
धीर बुद्धि वह द्विज भयो, नित शिव जिनि पीछे फिरें॥

गीता-माहात्म्य

[११]

अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च ।
शरणागतसंत्राणकलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
दीनस्योपेक्षणं कृत्वा भीतस्य च शरीरिणः ।
पुण्यवानपि कालेन कुम्भीपाके सपच्यते ॥*

(पद्म पु० उ० ख० १८१ अ० ८२, ८४ श्लो०)

छप्पय

गीता के अध्याय ग्यारवें को महात्म्य सुनि ।
मेघङ्कर इक नगर प्रणीता सरिता तट मुनि ॥
तामें विप्र सुनन्द पढ़ै एकादश नित प्रति ।
तीरथ-हित इक नगर गयो शालामहँ इस्थिति ॥
तामें इक राक्षस रहत, पथिकनिकूँ भक्षे सतत ।
खाये तिनि ये विप्र नहिँ, ग्रामपाल पूछत चकित ॥

---

* सहस्रों अश्वमेध यज्ञ, सैकड़ो वाजपेय यज्ञों के फल मिलकर भी शरणागत रक्षण के पुन्य की सोलही कला के सदृश भी नहीं हैं । जो जो समर्थ होकर भी भयभीत तथा दीन बने जीव की उपेक्षा करता है, वह भले ही पुण्यवान् भी पुरुष क्यो न हो काल आने पर वह कुम्भीपाकादि नरको में पकाया जाता है ।

शास्त्रकारों ने कहा है। कोई वेदज्ञ ब्राह्मण है, उसने विधि पूर्वक समस्त वेदों का अध्ययन किया है। केवल अध्ययन ही नहीं किया है। वेदों के पढ़ने का जो समदर्शी होना फल है, वह भी उसने प्राप्त कर लिया है। अर्थात् वह सभी में एक आत्मा जानकर सबके साथ समान व्यवहार करता है। उसके चित्त की वृत्ति भी शान्त हो गयी है। इतना सब होते पर भी किसी का दुख दूर करने की सामर्थ्य रहने पर भी दीनों की उपेक्षा करता है, अपने सामने कोई असमर्थ दीन को भयभीत कर रहा है और उस शरण आये हुए प्राणी की जो रक्षा नहीं करता उसका ब्रह्म तेज उसी प्रकार चू जाता है, जिस प्रकार किसी घड़े में थोड़ा-सा भी छिद्र होता है, तो उसका जल चू जाता है। सामर्थ्य होने पर दीन-दुखियों की उपेक्षा करके अपने काम में लगे रहना, यह कोई प्रभु की आराधना नहीं।

शंकरजी के पास देवता गण कालकूट विष से दुखी होकर उनकी शरण में गये और उनसे विषपान करने की प्रार्थना करने लगे, इस पर सतीजी बड़ी कुपित हुईं। उन्हें बड़ा बुरा लगा, कि स्वार्थी देवतागण "मेरे प्राणनाथ को विष पिलाना चाहते हैं।" मैं इन्हें विष नहीं पीने दूँगी।

आशुतोष भगवान् भोलानाथ सतीजी के अभिप्राय को समझ कर उनको समझाते हुए कहने लगे—"प्रिये! देखो तो सही, इन देवता और असुरों के ऊपर इस समय कैसा महान् संकट आया हुआ है। समुद्र मंथन करते समय सर्व प्रथम कालकूट विष ही निकला है। इससे ये सभी बड़े भयभीत हैं, सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची है। सब रक्षा के लिये मेरी शरण में आये हुए हैं। ये सब कालकूट विष से संत्रस्त होकर अपने-अपने प्राण बचाने को उत्सुक हैं।"

सतीजी ने कहा—"दुखी हैं, तो हम क्या करें। दूसरों की आफत को अपने सिर ले लें, यह भी कोई बात हुई ?"

शिवजी बोले—"देखो, देवि ! तुम समझती नहीं। लोग सामर्थ्यवानों की शरण में अपने दुख दूर कराने को आते हैं। भय से भीत हुए प्राणी समर्थों का ही आश्रय लेते हैं। दुखी पुरुष अपने दुख दूर कराने को जिसकी शरण में आया हो और उसमें उस दुःख को दूर करने की यथार्थ में सामर्थ्य भी हो तो उसके जीवन की सफलता इसी में है कि वह शक्ति रहते हुए दीन दुखियों का दुख दूर करे। उनकी रक्षा करें।"

सतीजी ने कहा—"यह भी कोई बात हुई दूसरों के लिये अपने प्राण गँवा दे।"

शिवजी ने कहा—"परोपकारियों की यही तो विशेषता है, वे इन क्षणभंगुर प्राणों की भी बलि देकर दूसरों के दुःखों को दूर किया करते हैं। जो समर्थ होकर भी शरणागतों की उपेक्षा करते हैं, उन्हें पाप लगता है। ये संसारी प्राणी तो स्वार्थ परायण होते ही है। ये तो मोह की माया में फँस कर विमोहित हो ही रहे हैं परस्पर में एक दूसरे से वैर बाँध कर लड़ते ही रहते है। ऐसे लोगों पर जो कृपा करते हैं, उनके ऊपर करुणा करते हैं, उनके दुःख को दूर करते हैं, उनके इस कृत्य से सर्वान्तर्यामी भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। जिस पर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, उस पर चराचर जगत् प्रसन्न है, मैं भी उस पर प्रसन्न हो जाता हूँ।"

सतीजी ने पूछा—"तब आप की इच्छा क्या है ? आप करना क्या चाहते हैं।"

भगवान् भोलानाथ ने कहा—"कल्याणी ! इसलिये मैं इन शरणागत दीनों के दुख दूर करने के निमित्त अभी-अभी इसी

क्षण चलकर हलाहल विष का पान करूँगा। जिससे मेरी इस समस्त प्रजा का दुख दूर हो, सबका परम कल्याण हो।"

तब सतीजी ने भी अपनी सहमति प्रकट कर दी और शिवजी ने विषपान करके प्रजा के दुख को दूर कर दिया। देवता असुर तथा समस्त प्राणियों को निर्भय बना दिया।

इस पर प्रश्न होता है, शिवजी अपना भजन पूजन छोड़कर विषपान जैसे साधारण कार्य को क्यों करने लगे? इससे इतनी देर भगवत् अराधना तो छूट गयी?

इस पर परमहंस चक्र चूड़ामणि भगवान् शुकदेवजी कहते हैं—"देखो, जो परोपकारी पुण्य पुरुष होते हैं, वे प्रायः करके प्राणियों का दुख दूर करने के निमित्त स्वयं ही दुख झेला करते हैं। दूसरों के दुःखों को अपने ऊपर लेते हैं। इससे उनकी आराधना में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जप, तप, यज्ञ यागादि तो भगवान् की आराधना हैं ही। किन्तु परोपकार के निमित्त दूसरों की पीड़ा दूर करने के निमित्त स्वयं पीड़ा सह लेना यह भगवान् की आराधना नही परमाराधना है। उत्कृष्ट आराधना है। क्योंकि वे भगवान् तो अखिलात्मा हैं, सबके हृदय में समान रूप से निवास करते हैं। अतः दुखी पुरुष की सेवा करने का अर्थ हुआ सर्वान्तर्यामी की आराधना करना। दया से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य कार्य नहीं है। इसी बात का उपदेश गीता जी के ग्यारहवें अध्याय के माहात्म्य से मिलता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब मैं आपको श्रीमद्भगवत् गीता के ग्यारहवें अध्याय का माहात्म्य उसी प्रकार सुनाउँगा, जिस प्रकार श्री विष्णु भगवान् ने लक्ष्मी जी को और श्री शिवजी ने पार्वती जी को सुनाया था। पार्वती जी के पूछने पर शिवजी ने कहा—"देवि! श्रीमद्भगवत् के एकादश अध्याय

के महात्म्य की अनन्त कथायें हैं। इस अध्याय का नाम ही विश्वरूप दर्शन योग है। उन अनन्त कथाओं में से एक कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ। तुम उसे दत्त चित्त होकर श्रवण करो।

प्राचीन काल में परमपावन पुण्यतोया प्रणीता सरिता के तट पर मेघङ्कर नाम का परम पावन अत्यन्त विख्यात् समृद्धशाली एक नगर था। उसकी शोभा का क्या कहना। वह पुरी अपने विशाल वैभव और स्वर्ग की श्री को भी फोकी बनाने वाली अपनी समृद्धि के कारण विश्व में विख्यात थी। क्यों न हो उसमें शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णु का एक भव्य मन्दिर था। जिसमें भगवान् जगदीश्वर नित्य ही निवास करते थे। उनका गौरवपूर्ण श्रीविग्रह भगवती कमला देवी के कमनीय कटाक्षों द्वारा नित्य ही पूजित होता था। उस मन्दिर में त्रिविक्रम भगवान् श्रीवत्स चिन्ह से युक्त, असंख्य मणिमय भूषणों से मंडित, पीताम्बरधारी, बनवारी वामन विराजमान थे। विद्युत की आभा को तिरष्कृत करने वाली श्रीविग्रह की शोभा के दर्शन से दर्शनार्थी नर-नारी अपने को कृतार्थ मानते थे।

वह परम पावन तीर्थस्थली थी। भगवान् के दिव्य देश के अतिरिक्त मेखला नाम का एक महान् तीर्थ भी उस नगरी में विद्यमान था। जिसमें स्नान करने से स्नान करने वालों को वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति हो जाती थी। वहीं पर नृसिंह भगवान् विघ्न विनाशक भगवान् गणपति आदि देवों के भी मन्दिर थे, जिनके दर्शनो से समस्त विघ्न दूर हो जाते थे ऐसे परम पावन, मुनिमन भावन, सकल पाप नशावन मेघङ्कर नामक नगर में एक ब्रह्मचर्यव्रत परायण, वेदादि शास्त्रों के गायन में प्ररम प्रवीण, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, अहंता ममता से शून्य सुनन्द नाम के ब्राह्मण निवास करते थे।

उनका नित्य का नियम था, कि वे शार्ङ्गपाणि भगवान् वासुदेवजी के मन्दिर में बैठकर निरन्तर श्रीमद्भगवत् गीता के ग्यारवें अध्याय का पाठ किया करते थे। गीता के ग्यारहवें अध्याय का निरन्तर ध्यान पूर्वक अर्थ का अनुसन्धान करते हुए पाठ करते रहना ही उनका जप, तप, पूजा, पाठ, यज्ञ तथा अनुष्ठान था। निष्ठा पूर्वक नित्य के निरन्तर पाठ मे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, उन्हें ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो गयी थी। ब्रह्मानन्द-संदोह से सर्वश्रेष्ठ ज्ञानमयी समधि की स्थिति उन्हें प्राप्त थी। उनका मन निश्चल हो गया। विशेष क्या कहें वे जीवन्मुक्त महापुरुष परम सिद्धि को प्राप्त करके कृतकृत्य हो गये थे। उनके हृदय की ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो गयी थी, उनके समस्त संशय नाश हो गये थे और वे कर्मबन्धन से विमुक्त बन गये थे। उन्हें कोई कर्तव्य कर्म शेष नहीं रहा था।

एक बार जब बृहस्पति सिंह राशि पर अवस्थित हुए, जिस समय गोदावरी का बड़ा पर्व होता है, बडा भारी मेला लगता है, उसी समय उन्होंने गोदावरी नदी के तटवर्ती समस्त तीर्थों की यात्रा आरम्भ की। वे गोदावरी के किनारे-किनारे विरज-तीर्थ, तारातीर्थ, कपिला संगम, अष्टतीर्थ, कपिलाद्वार, नृसिंहवन, अम्बिकापुरी तथा करस्थानपुर आदि-आदि पुण्य क्षेत्रों में, मनोहर सरिता संगमों में स्नान ध्यान पूजा पाठ करते हुए विवाह मण्डप नामक नगर में पहुँचे। और भी बहुत से तीर्थ यात्री उनके संग हो गये। समस्त तीर्थ यात्रियों को रात्रि भर ठहरने के लिये उन्होंने बहुतों से ठहरने का स्थान माँगा, किन्तु किसी ने भी उन्हें अपने घर में ठहरने का स्थान नहीं दिया। तब वे उस ग्राम के मुखिया के समीप गये। मुखिया ने उन्हें एक

बहुत बडो धर्मशाला दिखाते हुए कहा—"आप सब लोग इसी मे ठहर जाइये।"

ब्राह्मण ने देखा धर्मशाला बहुत बडी है, किन्तु श्री हीन है, वह देखने में भयकर दिखायी दे रही है। उसमें विशेष यात्री भी नही है। इनको एक रात्रि ही तो ठहरना था, थके हुए भी थे अतः विशेष विचार न करके साथियों सहित उसमें ठहर गये।

प्रातःकाल जब उनकी निद्रा टूटी, तो क्या देखते है, वे रात्रि मे जहाँ सोये थे वहाँ नही है। उन्हें किसी ने बिस्तर सहित उठाकर ज्यो का त्यों धर्मशाला के बाहर सुला दिया है। वे चकित-चकित दृष्टि से चारों ओर निहारने लगे। न तो उन्हें कोई अपना एक भी साथी दिखायी दिया और न उनकी कोई वस्तु भी। वे धर्मशाला मे गये तो वहाँ भी कोई नही था। वे कुछ समझ ही न सके कि यह क्या रहस्य है। उसी समय उनको सामने से आता हुआ वही ग्रामपाल (मुखिया) दिखायी दिया। इनको सकुशल जीवित देखकर मुखिया परम विस्मित हुआ। आते ही वह उनके पैरों पर गिर पड़ा और अत्यन्त ही दीन वाणी मे गद्गद कठ से कहने लगा—"विप्रवर! आप कोई सिद्ध महापुरुष हो, परम सौभाग्यशाली महापुरुष हो। आप साधारण मनुष्य नही आप लोकोत्तर अति मानुष महात्मा हो। आपने कोई महान् सिद्धि प्राप्त करली है। ऐसा सन्त तो मैंने देखा नही। कृपा करके आप कुछ दिन इस ग्राम को कृतार्थ करें, मुझे अपनी सेवा का सुअवसर प्रदान करें। मैं आपकी सब प्रकार सेवा करूँगा।"

ब्राह्मण ने पूछा—"मेरे साथी कहाँ चले गये, मैं धर्मशाला के बाहर कैसे आ गया?"

ग्रामपाल ने कहा—"ब्रह्मन्! आपके साथी चले गये होगे।

अभी आप मुझसे सब बातें न पूछें। कुछ दिन मुझे सेवा का सुअवसर प्रदान करें।"

दयालु ब्राह्मण ने उस ग्रामपाल की प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे बड़े आनंद के साथ ग्रामपाल के यहां रहने लगे। ग्रामपाल भी अत्यंत भक्ति भाव के साथ, तन, मन तथा धन से उनकी सब प्रकार की सेवा सुश्रूषा करने लगा। इस प्रकार वहाँ रहते हुए सुनन्द ब्राह्मण को अभी ७-८ दिन ही हुए थे, कि एक विचित्र घटना घटित हो गयी।

एक दिन महामुनि सुनंद प्रातःकाल स्नान करके अपने स्थान पर आये ही थे, कि उनके पास रोता हुआ ग्रामपाल आया। वह अत्यन्त ही दुखी था, उसके दोनों नेत्रों से झर-झर आंसू बह रहे थे, आते ही वह सुनन्द जी के पैरों पर गिर पड़ा और ढाढ़ मार कर रोने लगा।

सुनन्दजी ने अत्यंत ही प्रेम से बल पूर्वक उसे उठाया और शांत्वना देते हुए उससे पूछने लगे—"ग्रामपाल! तुम रोते क्यों हो, तुमको कौन-सा दुख है? तुम अपनी विपत्ति का कारण मुझे बताओ। उसे सुनकर मैं उसे हटाने की शक्ति भर चेष्टा करूंगा।"

ग्रामपाल ने कहा—"भगवन्! मेरे पुत्र को राक्षस ने चबा लिया। मेरा पुत्र बड़ा ही सुशील गुणवान् तथा भक्तिमान था।"

सुनन्दजी ने पूछा—"कौन राक्षस? कैसे उसने तुम्हारे पुत्र को चबा लिया, मुझे सब बातें भली प्रकार से बताओ।"

ग्रामपाल ने कहा—"महाराज! एक राक्षस है उसी ने मेरे पुत्र को खा लिया है।"

ब्राह्मण ने पूछा—"वह राक्षस कहाँ रहता है? और तुम्हारे पुत्र को उसने क्यों खा लिया है?

ग्रामपाल ने कहा—"ब्रह्मन् ! अब में आप से सच्ची-सच्ची बात बताये देता हूँ । अब तक तो मैं आप से उस बात को छिपाये हुए था । हमारे इस ग्राम में एक बड़ा भारी राक्षस रहता था। वह जब चाहता तभी किसी के भी घर में घुसकर उस घर के पुरुषों को खा जाता । इससे पूरा ग्राम सदा सर्वदा भय-भीत बना रहता, कि न जाने आज किसके घर के आदमी को खा जाय । तब हम सब लोगों ने मिलकर सम्मति की कि राक्षस से संधि कर लेनी चाहिये । यह सोचकर हम सब ग्रामवासी मिलकर उस राक्षस के समीप गये । उस राक्षस ने पूछा—"तुम सब मिलकर मेरे पास *क्यों आगे हो ? तुम मुझसे क्या प्रार्थना करना चाहते हो ?"*

तब ग्राम वासियों ने कहा—"राक्षसराज ! आप हमें इतना दुःख क्यों देते है ?"

गरज कर राक्षस ने कहा—"मै क्या दुःख देता हूँ, अपने पेट भरने का सभी उपाय करते हैं, क्या मै भूखा रहूँ ?"

ग्रामवासियों ने कहा—"भूखे क्यों रहेंगे ? हम आपके भोजन की व्यवस्था करेंगे । ऐसे आप जिसके चाहे घर में घुस जाते है, इससे सभी भय-भीत बने रहते है । एक भोजन का निश्चित नियम बना लो ।"

राक्षस ने कहा—"तुम ही मिलकर नियम बनालो, जिससे मेरा पेट भर जाया करे । फिर मै ऐसे किसी के घर न जाऊंगा ।"

तब ग्रामवासियों ने कहा—"राक्षसराज ! यह धर्मशाला है, इसमे नित्य ही बाहर के यात्री आकर ठहरते हैं । जब यात्री सो जाया करे तो आप उनको खा जाया करना । ग्रामवासियों पर कभी प्रहार न करना । उन्हें मत खाना ।"

राक्षस ने यह बात स्वीकर कर ली । तब से बहार का जो भी यात्री आता, ग्राम वाले उसे अपने यहाँ न ठहरा कर धर्मशाला में

भेज देते, रात्रि में राक्षस उन सब को खा जाता इस प्रकार गाँव के लोग निर्भय होकर रहने लगे।

ग्रामपाल सुनन्द ब्राह्मण से कह रहा है—"सो, ब्रह्मन्! हम ग्राम वासी यात्रियों का बलिदान कराकर अपने को सुरक्षित समझे बैठे थे। आप भी अपने साथियों सहित जब इस ग्राम में आये थे, तो किसी ग्राम वासी ने आपको अपने घर में नहीं ठहराया था। तब मैंने ही आपको साथियों सहित इस धर्मशाला में ठहरने को कहा था। रात्रि में सोते हुए आप के सब साथियों को तो राक्षस खा गया था। आपको न जाने वह क्यों नहीं खा सका। आप को उसने केवल धर्मशाला के बाहर कर दिया। यह एक अभूत पूर्व अद्भुत घटना थी। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ। इसी से मुझे आप पर परम श्रद्धा हो गयी। मैं समझ गया आप कोई मंत्र-तंत्र जानते हैं, आप में कोई महान् सिद्धि है जो नर भक्षी ने भी आपको छोड़ दिया।"

सुनन्द ब्राह्मण ने पूछा—"जब राक्षस से तुम्हारा समझौता हो गया था, कि ग्राम के किसी आदमी को न खायगा, तो उसने आज तुम्हारे पुत्र को क्यों खा लिया?"

ग्रामपाल ने कहा—"हाँ, उसी बात को तो मैं सुना रहा हूँ। कल मेरे पुत्र का एक मित्र आया हुआ था। हमने नियमानुसार उस पुत्र के मित्र को भी उसी धर्मशाला में सुला दिया। मेरे पुत्र की उस लड़के के साथ प्रगाढ़ मैत्री थी, वह उसे अत्यन्त प्यार करता था, इसलिये मुझसे बिना कहे मेरा पुत्र भी धर्मशाला में चला गया और अन्य यात्रियों के साथ उस राक्षस ने मेरे पुत्र को भी खा लिया।"

इस समाचार को सुनते ही मैं तुरन्त आज प्रातःकाल उस राक्षस के पास गया और क्रोध में भरकर मैंने पूछा—"राक्षस!

जब हमने तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर दिया था; तो तुमने यह नियम के विरुद्ध बात क्यों की ? मेरे पुत्र को तुम क्यो खा गये ।"

इस पर उस राक्षस ने कहा—"ग्रामपाल जी ! आप क्रोध न कर। मेरी बात पहिले सुन ल । सच कहता हूँ, मैंने जान बूझकर तुम्हारे पुत्र को नही खाया। अन्य यात्रियो के साथ वह भी भूल में मेरे मुख में चला गया। मेरा आहार बन गया। अब मैं एक उपाय बताता हूँ जिससे मेरे पेट में गया हुआ तुम्हारा पुत्र सुरक्षित रह सके।"

मैंने राक्षस स पूछा—"वह उपाय कौन सा है ? तुम मुझे शीघ्र बता दो, मैं उसे अवश्य करूँगा।"

राक्षस ने कहा—"उपाय तो स्वयं विधाता ने ही पहिले से निश्चित कर दिया है । इससे तुम्हारा पुत्र भी बच जायगा और मेरी भी इस राक्षस योनि से मुक्ति हो जायगी।"

ग्रामपाल कह रहा है—"ब्रह्मन् ! जब मैंने उससे उपाय बताने का आग्रह किया, तो राक्षस ने कहा—"ग्रामपाल जी ! जो ब्राह्मण निरन्तर गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ करते हों, उनके द्वारा मेरा भी उद्धार हो जायगा और मेरे द्वारा मारे हुए समस्त प्राणियों का भी पुन: जीवन प्राप्त हो जायगा। एक ब्राह्मण यहाँ धर्मशाला में आया था, उसके तेज के प्रभाव से मैं उन्हें खा नहीं सका। मैंने केवल उन्हें धर्मशाला के बाहर कर दिया था, उनके सभी साथियों को मैं खा गया था। मैंने सुना है, वे विप्रवर अभी तक इसी ग्राम मे निवास करते हैं, तुम उनके पास जाओ। उनसे प्रार्थना करो। वे गीता के ग्यारहवें अध्याय के मन्त्रो स सात बार अभिमन्त्रित करके मेरे ऊपर उस अभिमन्त्रित किये जल के छींटे दें, तो मैं अवश्य शाप से मुक्त

हो जाऊंगा और तुम्हारा पुत्र तथा अन्य जितने भी जीवों को मैंने खाया है, उन सब की सद्गति हो जायगी। सो कृपा करके आप मेरे साथ चलें।"

यह सुनकर द्विजवर सुनन्द जी ने ग्रामपाल को सान्त्वना देते हुए कहा—'ग्रामपाल जी ! आप चिन्ता न करें, आप शीघ्र ही मुझे उस राक्षस के पास ले चलें। किन्तु यह बतावें कि वह किस पाप के कारण राक्षस बना है।"

सुनन्द ब्राह्मण के पूछने पर ग्रामपाल ने बताया। ब्रह्मन् ! मैं जानता हूँ यह व्यक्ति कैसे राक्षस बना। पहिले यह व्यक्ति हमारे इसी ग्राम का रहने वाला था। जन्म से तो वह ब्राह्मण था, किन्तु विशेष पढ़ा लिखा नहीं था। कृषि कर्म करके जीवन निर्वाह करता था। एक दिन वह अपने खेतों पर अगहनी अन्न की क्यारियों की रक्षा कर रहा था। उसके खेतों के ही समीप एक मार्ग था। उससे यात्री आया जाया करते थे। एक दिन कोई अकेला यात्री आ रहा था, इस किसान के खेत के समीप ही एक सघन वृक्ष की छाया में वह यात्री बैठ गया। उसी समय एक बड़ा भारी गीध आया। उस गिद्ध ने आते ही उस यात्री पर प्रहार किया और उसे नोंच-नोंचकर खा गया। दूर से कोई माहात्मा देख रहे थे। वे उसकी रक्षा के लिये दौड़े आये। जब तक महात्मा वहाँ पहुँचे, तब तक गिद्ध उस यात्री को खा कर आकाश में उड़ गया। वहाँ उसकी कुछ हड्डियाँ ही पड़ी शेष रह गयीं। महात्मा जी का हृदय दया से भर रहा था। उन्होंने देखा यह कृषक समीप ही था, इसने यात्री की कुछ भी सहायता नहीं की, इस बात से उन दयालु महात्मा को बड़ा क्रोध आ गया। उन्होंने उस किसान को डाँटते हुए कहा—"नीच ! तेरे सम्मुख इतना भारी कांड हो गया, ऐसी भीषण दुर्घटना हो

गई किन्तु तूने उस यात्री की तनिक भी सहायता नहीं की। यह काम तूने मनुष्यों को खाने वाले राक्षसों जैसा किया है, अतः जा तू मनुष्यों को खाने वाला राक्षस बन जा।

किसान ने दीनता से कहा—"ब्रह्मन्! मैं यहाँ उपस्थित तो अवश्य था, किन्तु मेरी दृष्टि तो निरन्तर क्षेत्र की रक्षा में ही लगी हुई थी, अतः मैं गिद्ध के द्वारा खाते हुए इस यात्री को देख नहीं सका। महात्मन्! आपने मुझे पुरुषों का खाने वाला राक्षस बनने का शाप दिया है। अतः मैं यह जानना चाहता हूँ, कि मनुष्य किन-किन पापों के कारण राक्षस जैसी अधम योनियों में जाते हैं?"

उस किसान के नम्रता पूर्वक ऐसा उत्तर देने से उन महात्मा का क्रोध शान्त हो गया था, उन्होने कहा—"देखो, यह मानव जीवन तो परोपकार के ही लिये है। जो परोपकार न करके निरन्तर पेट पालने की ही चिन्ता में लगा रहता है, उसका जीवन तो नष्ट प्रायः ही है। मनुष्य को जहाँ तक हो स्वयं कष्ट सह कर भी दूसरों के कष्टों को दूर करना चाहिये दूसरों को दुःख देने वाले प्राणी जैसे चोर हैं, सिंह व्याघ्रादि हैं, सर्प, शत्रु, अग्नि, विष, जल, गीध, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, बेताल आदि हिंसक क्रूर प्राणी हैं, इनके द्वारा किसी को त्रास हो रहा हो और अपने में इनसे बचाने की शक्ति हो, तो पूरी शक्ति के द्वारा सताये जाने वाले व्यक्ति की रक्षा करनी चाहिये। जो शक्ति रहते स्वार्थवश इनकी रक्षा नहीं करता, उनकी उपेक्षा कर देता है, तो उन देखने वालों को भी उनके वध का पाप लगता है। उन्हें इस पाप के कारण नरक में जाना पड़ता है।"

कोई भी दुःख में क्यों न फँसा हो, उसकी यथा शक्ति यथा सामर्थ्य रक्षा करनी चाहिये। मानलो कोई ब्राह्मण है, या अन्य

व्यक्ति है, चोर उसे लूट रहे हैं, कष्ट दे रहे हैं तो उसकी जैसे बन सके रक्षा करनी चाहिये। वन में भेड़िया, सिंह, गीदड़ या कोई अन्य हिंसक जन्तु किसी को मार रहा हो और समर्थ होने पर भी जो उसकी रक्षा नहीं करता उसे पाप लगता है, मरकर उसे नाना नरकों की यातना सहनी पड़ती है और अंत में उसे भेड़िया की योनि में ही जन्म लेना पड़ता है।

किसान ने पूछा—"भगवन् ! जो दीनो की रक्षा करते हैं, परोपकार के लिये अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देते हैं, उनकी क्या गति होती है ?"

महात्मा ने कहा—"देखो, भैया, जो हमसे दूसरों के द्वारा मारे जाने पर सहायता की याचना करता है हिंसक जन्तुओं द्वारा क्लेशित होने पर चिल्लाता है, सहायता की पुकार करता है। ऐसे लोगों की जो सहायता करते हैं, उन्हें परमगति की प्राप्ति होती है। गौओं की रक्षा करते-करते जो मर जाते हैं, हिंसक जन्तुओं से सताये जाने वालों की रक्षा करते-करते जो अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देते है, उन्हें योगियों से भी बढ़कर गति प्राप्त होती है। शरणागतों की रक्षा करना यह बड़ा ही पुण्यप्रद कार्य है, इसकी समता सहस्रों अश्वमेघ यज्ञ सेकड़ों वाजपेय यज्ञ भी नहीं कर सक्ते। इसके विपरीत जो सामर्थ्य रहते हुए भी दीन हीन शरणागतों की उपेक्षा करता है, वह कुम्भीपाकादि नरकों में पचाया जाता है। तुमने समीप रहते हुए भी इस यात्री की रक्षा नहीं की, इससे तुम्हें राक्षस बनना पड़ेगा। तुम कहते हो, मैंने देखा नहीं। तो इससे तुम्हारा दोष कम हुआ। किन्तु मैंने कभी हंसी में भी असत्य भाषण नहीं किया, अतः तुम्हें राक्षस तो होना ही पड़ेगा, किन्तु एक सदाचारी तपस्वी ब्राह्मण की कृपा से तुम्हारा शीघ्र हीं इस योनि से उद्धार हो जायगा।"

किसान ने पूछा—"भगवन्! मेरा उद्धार कब होगा, और किस ब्राह्मण के द्वारा होगा इसका भी समय बता दें।"

तब उन महात्मा ने कहा—"थोड़े ही दिनों में तुम्हारे इस गाँव में श्रीमद्भगवत् गीता के विश्वरूप दर्शन योग नाम के ग्यारवें अध्याय का निरन्तर पाठ करने वाला एक ब्राह्मण आवेगा। वह गीता के मंत्रों से अभिमंत्रित करके उस जल के तुम्हारे ऊपर छींटा देगा, तभी तुम्हारा उद्धार हो जायगा।" यह कह कर वे महात्मा तो चले गये। वह किसान राक्षस होकर इस गाँव में रहने लगा और धर्मशाला में आये हुए यात्रियों को खाकर अपने उदर की पूर्ति करने लगा। आपके आने से उसे अपने उद्धार की आशा बंध गयी है अतः "आप शीघ्र ही वहाँ चलकर उस राक्षस का उद्धार करें और उसके उदर में गये मेरे पुत्र की रक्षा करें।"

ग्रामपाल के ऐसा कहने पर दया के सागर उस ब्राह्मण का हृदय दया से द्रवित हो गया। उन्होंने कहा—"अच्छी बात है, तुम उस राक्षस के समीप मुझे ले चलो। मुझसे जो भी बन पड़ेगा वह सब कुछ करूंगा।" ऐसा कहकर वे विप्रवर ग्रामपाल को साथ लिये हुए उस राक्षस के समीप पहुँचे। उन्होंने विश्वरूप दर्शनयोग नामक गीता के ग्यारहवें अध्याय से अभिमंत्रित करके सात बार उस जल को राक्षस के मस्तक पर डाला। उस जल के पड़ते ही, उसने राक्षस का शरीर त्याग दिया और वह शंख, चक्र, गदा, और पद्मधारी चतुर्भुज दिव्य पुरुष बन गया। वह पीताम्बर पहिने था, उसके गले में पंचरंगी माला पड़ी थी दिव्य भूषणों से उसके समस्त अंग विभूषित थे। यही नहीं कि वह अकेला ही देवता बन गया हो, आज तक उसने जितने लोगों को खाया था, वे सबके सब चतुर्भुज हो गये थे। सबकी कान्ति एक-

सी थी सभी के अंग मणिमय दिव्य आभूषणों से विभूषित थे।

तब ग्रामपाल ने देवता बने राक्षस से कहा—"राक्षसराज इन इतने चतुर्भुजधारी दिव्य पुरुषों में मेरा पुत्र कौन-सा है।"

इस पर राक्षस ने कहा—"ये जो दिव्य विमान में आरूढ़ हैं, जिनके शरीर की दिव्य कान्ति तमाल के समान शोभा पा रही है जो अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा, और पद्म धारण किये हुए हैं, जिनके अंगों की कान्ति दिव्य आभूषणों से परम शोभा पा रही है, जो मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं जिनके कानों में मणिमय कमनीय कुन्डल शोभा पा रहे हैं, जिनके गोल-गोल कपोलों की आभा कुन्डलों के कारण विद्युत के समान चमक रही है, जिनके कमल के समान नयन विकसित हो रहे हैं, देवत्व को प्राप्त इन्हीं महापुरुष को अपना पुत्र समझें।"

तब ग्रामपाल ने उसके समीप जाकर कहा—"बेटा ! तुम्हारी माँ परम दुखित हो रही है मैं भी तुम्हारे वियोग रूपी दुःख सागर में निमग्न हो रहा हूँ, तुम घर चलकर सबको सान्त्वना दो। अपने दर्शनों से सभी को सुखी बनाओ।"

यह सुनकर देवत्व को प्राप्त उसका पुत्र बोला—"ग्रामपाल ! यह तो संसार चक्र है, पता नहीं, के बार तुम मेरे पुत्र हुए और मैं के बार तुम्हारा पुत्र हुआ। यह पिता पुत्र तथा भाई बन्धु का नाता शरीर सम्बन्ध से होता है। जब तक शरीर है तभी तक ममत्व है। अब मैंने उस मानव शरीर को त्याग कर इस दिव्य देह को प्राप्त कर लिया है। अब मेरे लिये पुराने सम्बन्ध पुराने शरीर के साथ ही नष्ट हो गये। ये संसारी सभी सम्बन्ध मिथ्या हैं, नाशवान हैं अनित्य हैं। जो इन्हें नित्य तथा सत्य समझते हैं वे ही संसारी बन्धनों के चक्कर में पड़कर पिसते रहते हैं। इन परम कृपालु ब्राह्मण देव की कृपा से इस क्रूर कर्मा राक्षस का

भी उद्धार हुआ और साथ ही हम लोगों का भी उद्धार हो गया। यह सब श्रीमद्‌भगवत् गीता के ग्यारहवें अध्याय के पाठ का चमत्कार है। साक्षात् परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण चन्द्रजी ने इसका उपदेश अपने प्रिय भक्त अर्जुन को दिया था। इसके कारण न जाने कितने जीवों का कल्याण हुआ है, हो रहा है और आगे होता रहेगा। साधुओं का संग सभी को प्राप्त नहीं होता। किसी भाग्यशाली को ही अनेक जन्मों के पुण्य स्वरूप सत्संग की प्राप्ति होती है।"

ये महात्मा सुनन्दजी परमधन्य हैं, मंगल स्वरूप हैं। ये निरंतर श्रीमद्‌भगवत् गीता के एकादश अध्याय का पाठ करते रहते हैं। इससे समस्त सिद्धियाँ इनके चरणों में लोटी रहती हैं। इनकी सिद्धि का प्रत्यक्ष चमत्कार तो आपने देख ही लिया। अब आप इन्हीं से गीता के ग्यारहवें अध्याय का अर्थ सहित अध्ययन कीजिये और उसी के द्वारा संसार सागर को बात की बात में अनायास ही तर जाओगे। यह मोक्ष की परम रसायन है, समस्त आधि-व्याधियों को नाश करने का सर्वोत्कृष्ट साधन है, यह सर्वोत्तम सरल सरस सर्वोपयोगी सुगम साधन है।"

इतना कह कर वे सब के सब दिव्य विमानों में बैठकर विष्णु लोक को चले गये। उनके चले जाने पर ग्रामपाल ने इन सुनन्द ब्राह्मण से विधि पूर्वक गीता के एकादश अध्याय का अध्ययन किया, मनन किया। उसके प्रभाव से सुनन्द ब्राह्मण और ग्रामपाल को विष्णु लोक की प्राप्ति हुई।"

महादेवजी पार्वती जी कह रहे हैं—"देवि, यही एक छोटी सी गीता के ग्यारहवें अध्याय की माहात्म्य कथा है। ऐसी अनेकों कथायें हैं, इनके श्रवण मात्र से ही असंख्यों पातकों का नाश हो जाता है। यह मैंने ग्यारहवें अध्याय का महात्म्य सुनाया। अब

आगे बारहवें अध्याय का माहात्म्य कहूँगा। आशा है तुम इसे दत्त चित्त होकर श्रवण करोगी।

छप्पय

ग्राम पाल ने कही—गृद्ध इक पथिकहिँ खायो।
खावत देखत कृषक न ताकूँ आइ बचायो॥
शाप संत तिहि दयो—राकछ्स है नर खावै।
गीता एकादशी जपत द्विज शाप छुड़ावै॥
जप अभिमन्त्रित विप्र को, पर्यो पथिक जीवित भये।
राक्षस के हू सहित सब, भये चतुरभुज तरि गये॥

अथ

एकादशोऽध्यायः

(११)

अर्जुन की विश्वरूप दर्शन की प्रार्थना (१)

[१]

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥*

(श्री भग० गी० ११ अ० १, २ श्लोक)

छप्पय

सुनि विभूति अरु गुह्यज्ञान अरजुन अति विस्मित ।
बोले गद्‌गद गिरा पकरि हरि चरन मुदित चित ॥
बड़ी अनुग्रह करी ज्ञान अतिगुह्य सुनायो ।
कहें जाइ अध्यात्म मुनिनि के मन जो भायो ॥
गोपनीय अति ज्ञान को, प्रभो ! दयो उपदेश अति ।
भयो नाश अज्ञान मम, लगी चरन तव सहज मति ॥

---

* अर्जुन ने कहा—हे भगवन् ! आपने जो परम गोपनीय अध्यात्म विषयक वचन मेरे ऊपर अनुग्रह करके कहे, उनसे मेरा मोह नष्ट हो गया ।।१।।

क्योंकि हे कमल नयन ! मैंने आपसे प्राणियों की उत्पत्ति विनाश के सम्बन्ध मे विस्तार से सुना तथा आपके अविनाशी प्रभाव के सम्बन्ध मे भी सुना ।।२।।

इस बात को हम प्रसंगानुसार बार-बार याद दिलाते रहे हैं और आगे भी समय-समय पर दिलाते रहेंगे कि इस लोक में दो निष्ठायें हैं। कर्मयोगियों अर्थात् वर्णाश्रमियों को कर्ममार्ग-अपने-अपने वर्ण आश्रम के अनुसार कर्म करते हुए मुक्ति प्राप्त करना। इस कर्ममार्ग में भी दो भेद हैं मतभेद कर्म में नहीं है। मुक्ति के स्वरूप में है. वेदवाद में रत-वैदिक कर्मों को ही यावज्जीवन करते रहने का आग्रह करने वाले मीमांसक लोग स्वर्ग प्राप्ति को ही मुक्ति मानते हैं। यावज्जीवन यज्ञ यागादि शुभ कर्म करते रहो, अक्षय स्वर्ग सुख भोगते रहो फिर आओगे भी तो परम पवित्र श्रीमानों के घर में या योगियों के कुल में आओगे. वहाँ पुन: शुभ कर्म करके स्वर्ग लाभ करोगे। ये लोग वानप्रस्थ संन्यास की आवश्यकता नही समझते। किन्तु कर्ममार्गी वर्णाश्रमी कर्म करते-करते संन्यास तक पहुँचकर ब्रह्मलोक से भी परे-अष्टावरणों को भेदकर मुक्ति का स्वरूप मानते हैं, उसमें पुनरागमन नहीं होता। एक तो यह कर्ममार्ग दूसरा ज्ञानमार्ग उसमें वर्ण आश्रम का विरोध नहीं। साथ ही वह आवश्यक भी नहीं। इसमें संन्यास अर्थात् त्याग ही मुख्य है। जिस समय भी वैराग्य हो जाय, उस समय तुम चाहे जिस वर्ण के हो जिस आश्रम के हो. वहीं से छोड़कर चले जाओ निष्काम-कर्म रहित बन जाओ। कर्म निष्ठा और ज्ञान निष्ठा ये दोनों सनातन मार्ग हैं, परम प्राचीन हैं। समस्त गीता में भगवान् ने इन दोनों मार्गों से विलक्षण, दोनों का समन्वयात्मक एक तीसरा मध्यम मार्ग बताया है, उसे निष्काम कर्ममार्ग या भक्तिमार्ग कहते हैं। कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग का कहीं विरोध नहीं। अपने-अपने स्थान पर दोनों ठीक हैं। उन उनके अधिकारी उन-उन निष्ठाओं के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं अपने अन्तिम ध्येय तक पहुँच

सकते हैं। किन्तु सर्व साधारण के लिये भगवान् निष्काम कर्म-योग को सर्वोपयोगी सर्वसाधारण के अनुकूल मानकर बार-बार इसी पर बल देते हैं।

गीता का प्रथम अध्याय तो सैन्यावलोकन अध्याय है। अर्जुन को मोह हो जाने से इसे मोह योग भी कह सकते हैं। अर्थात् जिसे ससार मे विषाद न होगा अपने को मोहग्रस्त न समझेगा वह भक्तिमार्ग का अधिकारी हो नहीं।

दूसरा अध्याय है, गुरुवरण योग। ससार से जब विराग हो जाय तो मोह-ममता दूर करने को किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाकर कहना चाहिये (शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्) जैसा कि अर्जुन ने किया था। श्रीकृष्ण के शरणापन्न हुआ था।

अब तीसरा अध्याय है, उपदेश ग्रहण योग गुरु के सम्मुख जाकर उनसे विनम्रता से प्रश्न करें उनके उपदेशों को ग्रहण करे।

फिर चौथा अध्याय है, गुरु परब्रह्मयोग। गुरु में और परब्रह्म में भेद न माने। दयालु गुरु अपने आप कृपा करके अपनी भगवत्ता प्रकट कर देते हैं। उन पर विश्वास करे। यहाँ आकर शिष्य का पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है। अब सब गुरु रूप भगवान् के ही ऊपर सब कुछ निर्भर है। जब गुरुदेव ने स्वयं अपने श्रीमुख से कह दिया (अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया) 'मैं अज अविनाशी होकर भी जीवों पर कृपा करके योगमाया द्वारा शरीर धारण करता हूँ।'' जब उन्होंने हमें वरण कर लिया, हम शरणापन्न हो गये, तब हम सब कर्तव्यों से छूट गये। अब भगवान् जो करावें वह हम करेंगे।

अब पाँचवें में अर्जुन ने यह जिज्ञासा की कि ये जो दो कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग हैं इनमें से मैं किस मार्ग को ग्रहण करूँ। पहिले तो अर्जुन युद्ध छोड़कर-सर्वस्व त्याग कर-भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करके अपने आप संन्यास मार्ग को अच्छा मानकर उसी का अनुसरण करने को उद्यत हो गया था (श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके) भगवान् ने कहा—नहीं, तुम संन्यास निष्ठा के अधिकारी नहीं हो। तुम्हारे लिये कर्मयोग ही श्रेष्ठ है। (तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते)।

तब अर्जुन ने कहा—कर्मयोग अर्थात् वर्णाश्रम में तो ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं। ज्ञान बिना संन्यास के होता नहीं। संन्यास का अधिकारी वर्णाश्रम धर्मानुसार केवल ब्राह्मण ही है। मैं ब्राह्मण नहीं क्षत्रिय हूँ मेरी मुक्ति हो नहीं सकती। स्वजनों के वध से पाप लगेगा मैं नरक में जाऊंगा। तब कर्मयोग को आप मेरे लिये श्रेष्ठ क्यों बता रहे हैं? बस पञ्चम अध्याय से ही भगवान् ने ज्ञान कर्म के मध्यम मार्ग निष्काम कर्मयोग जो एक तीसरा विलक्षण मार्ग है उसे उपदेश दिया। भगवान् ने कहा—तुम निष्काम भाव से कर्म करो। जो करो उसे ब्रह्म के अर्पण करते जाओ। आसक्ति को छोड़कर फल की इच्छा न रखते हुए ब्रह्म के लिये-प्रभु की प्राप्ति के लिये-कर्म करो। ऐसा करने से तुम जहाँ हो वहीं मुक्त हो जाओगे। पाप पुण्य तुम्हें स्पर्श भी न करेगा। ब्रह्मण्याध्याय कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा)।

अर्जुन ने पुनः शंका की चाहें वर्णाश्रम मार्ग या कर्म-मार्ग हो, अथवा ज्ञान मार्ग। संन्यास की आवश्यकता तो दोनों में ही है। वर्णाश्रम धर्म में आदि वर्ण में ही सही संन्यास लेना ही पड़ता है, ज्ञानमार्ग में तो संन्यास ही मुख्य है। मैं

निष्काम भाव से वर्णाश्रम विहित कर्म तो करता रहूँगा, किन्तु फिर सन्यास का क्या होगा ?

तब छटे अध्याय में भगवान् ने संन्यास का यथार्थ रहस्य बताया कि कपड़े रंगने वाला अग्नि को न छूने वाला कर्म रहित बन जाने वाला ही सन्यासी नही है। यथार्थ संन्यासी तो वही है जो कर्मो के फल के आश्रित न रहकर कर्तव्य कर्मों को करता जाय। जो निष्काम कर्मयोग का अर्थात् भक्ति मार्ग का अनुसरण करता है वही भक्त संन्यासी है। वहीं चाहें किसी भी वर्ण का किसी भी आश्रम का हो, कैसा भी उसका वेष हो। यह कहकर भगवान् ने मन को रोकने के निष्काम होने के साधन बताये अतः छटा अध्याय है साधन योग।

सातवें में भगवान् ने अपने आप समग्र भक्ति योग का वर्णन किया। अर्थात् ज्ञान विज्ञान सहित समग्र भाव से मुझ अध्यात्म रूप ब्रह्म की शरण में कैसे जा सकते हो।

आठवें में अर्जुन ने अध्यात्म का प्रश्न किया तब भगवान् ने परम अक्षर अध्यात्म तत्त्व का इसमें वर्णन किया। तब फिर नौवें अध्याय मे गुह्य अध्यात्म अर्थात् राजविद्या राजगुह्य योग कहा।

इतना कहकर दशवें अध्याय में भगवान् ने कहा—"बुद्धि, ज्ञान, असूढ़ता, क्षमा, सत्य, दम, शम, दुःख, सुख, भय, और उत्पत्ति प्रलय मैं ही हूँ।" जब अर्जुन ने भगवत् विभूतियों की जिज्ञासा की तब भगवान् ने कहा—(सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन) अर्जुन मैं ही समस्त सृष्टि का आदि मध्य और अन्त हूँ और विद्याओं में अध्यात्म विद्या हूँ। अन्त में इस सबका माहात्म्य बताकर कह दिया "मैं इस सम्पूर्ण जगत् में अपने एक अंश से अवस्थित हूँ।" अर्था ये सब मेरा ही विराट् स्वरूप

है। तब अर्जुन को भगवान् के विराट् स्वरूप को देखने की इच्छा हुई। छटे अध्याय तक तो कर्म मार्ग और ज्ञान मार्ग का ही निर्णय हुआ। सातवें में अपना समग्र ज्ञान विज्ञान सहित भक्ति योग बताया।

अब अर्जुन को दृढ़ विश्वास हो गया। भगवान् ही विश्व के एकमात्र कर्ता धर्ता हर्ता विधाता तथा नियामक है। आठ, नौ और दस इन तीन अध्यायों में (१) अध्यात्म (२) राजविद्या राजगुह्य योग (३) जीवों की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय का कारण तथा (४) अपना अक्षय माहात्म्य अर्थात् दिव्य विभूतियों का वर्णन किया। फिर अर्जुन ने विराट् रूप दर्शन की जिज्ञासा करते हुए प्रार्थना की।

सूतजी कहते हैं— 'मुनियो! जब भगवान् ने अपने एक अंश से ही सम्पूर्ण संसार में प्रविष्ट बताया अर्थात् विराट्-रूप में केवल अपने ही आप को कहा तब अर्जुन ने कहा— "भगवन्! आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की मैं आपका अत्यन्त ही आभारी हूँ।"

भगवान् ने कहा—"मैने कौन सी कृपा की? आभार प्रदर्शन करने योग्य तो कोई बात नहीं।"

अर्जुन ने कहा—"हे क्यों नहीं प्रभो! आपने मुझे अध्यात्म योग का रहस्य समझाया। जो अत्यंत ही गुह्य योग है, गुह्यराज योग है। आप के इन वचनों से मेरा मोह दूर हो गया। जिस मोह के वशी भूत होकर मैं युद्ध से हट रहा था।"

गुह्य अध्यात्म योग के साथ ही आपने अपना अव्यय-अक्षय-माहात्म्य भी बता दिया। आपने मुझे यह दृढ़ निश्चय करा दिया कि विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के एक मात्र कारण आप ही हैं। ये सब बातें मैंने बहुत ही ध्यान पूर्वक सुनी परन्तु—

भगवान् ने कहा—"परन्तु क्या ? तुम अपना आन्तरिक अभिप्राय कहो। परन्तु कहने का तुम्हारा तात्पर्य क्या है ? तुम और क्या जानना चाहते हो। जब तुम्हारा मोह दूर हो गया, तो फिर मेरे वचनों को मानों युद्ध में प्रवृत्त हो जाओ। निष्काम कर्म में दो ही क्रियायें की जाती है। मेरा सतत स्मरण और निष्काम भाव से कर्तव्य का पालन। इन दोनों को करने लगो।"

अर्जुन ने कहा—"मुझे तो आपके वचनो पर पूरा विश्वास हो गया। मुझे यह भी दृढ़ निश्चय हो गया, कि आप ही विश्व की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय के एक मात्र कारण हैं। आप की आज्ञा पालन में ही मेरा कल्याण निहित है। फिर भी मेरा एक कुतूहल है। मेरी एक जिज्ञासा है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इसके आगे जैसे अर्जुन भगवान् से अपने विश्वरूप दर्शन की प्रार्थना करेंगे। उसका वर्णन मैं आगे करूंगा।"

छप्पय

अर्जुन बोले फेरि विनययुत विह्वल बानी।
कमलनयन! मुख कमल कही महिमा सो जानी॥
जैसे होवें प्रलय सबहिं भूतनि की भव में।
हों जैसे उत्पन्न सकल जा जीव जगत में॥
उतपति थिति अरु प्रलय को, मरम कह्यो तुमने प्रभो।
अविनाशी महिमा सुनी, और कछू पूछूँ विभो॥

अर्जुन की विश्वरूप दर्शन की प्रार्थना (२)

[२]

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥❀
(श्रीभा० गी० ११ अ० ३, ४ श्लोक)

छप्पय

महिमा निज जो कही सत्य मैंने सब मानी।
हैं पुरुषोत्तम आपु मृषा नहिँ तुमरी बानी॥
हे परमेश्वर! आपु सकल सद्गुन की खानी।
है अपार ऐश्वर्य रहें जग माहिँ अमानी॥
तेजयुक्त बलवीर्ययुत, प्रभु ऐश्वर्य अनूप है।
लखन चहूँ प्रत्यक्ष हौं, जो विराट तव रूप है॥

❀ हे परमेश्वर! आपने अपने आपको जैसा बताया है, आप यथार्थ में वैसे ही हैं, हे पुरुषोत्तम! अब मैं आपके ऐश्वर्ययुक्त रूप को देखना चाहता हूँ॥३॥

हे प्रभो! यदि आप ऐसा मानते हो कि यह इसके देखने का अधिकारी है, तो हे योगेश्वर! आप अपने अविनाशी स्वरूप को मुझे दिखाइये॥४॥

शास्त्र वचनों में तथा गुरु वाक्यों में श्रद्धा रखना यह भक्ति का प्रथम लक्षण है। समर्थ सद्गुरु में श्रद्धा हो जाय, तो फिर सब कुछ हो जाता है। कुछ लोग अपने आप तो कुछ साधन भजन करना नहीं चाहते। अपने को सुपात्र बनाने का प्रयत्न तो करते नहीं। चाहते यह है, कि बिना ही भूख के, बिना कुछ प्रयत्न किये, हमें बनी बनायी सुंदर रसोई मिल जाय, फिर बिना भूख के-अजीर्ण में-खाने से भले ही पेट बिगड जाय, किन्तु बना बनाया खाने क लिये स्वादिष्ट भोजन मिल जाय। ऐसे आलसी लोग कुछ उन्नति नहीं कर सकते। सद्गुरु अधिकारी देखकर ही-उसकी योग्यतानुसार साधन बताते हैं और उसकी योग्यता देखकर ही उनके सम्मुख अपना ऐश्वर्य प्रकट करते है।

एक अनधिकारी साधक किसी गुरु के पास गया। जाते ही गुरु ने उसे कुछ नाम जाप का साधन बताया। उसने कहा—"साधन आदि तो मैं पीछे करूंगा, पहिले आप कोई चमत्कार दिखाइये।"

जो गुरु को बाजीगर मानकर पहिले ही चमत्कार देखना चाहते हैं। वे अज्ञ हैं ऐसे भूले भटके बन्धु परमार्थ पथ की ओर अग्रसर नहीं हो सकते।

यह पुरुष श्रद्धामय है। अपनी श्रद्धा ही विश्वास के कारण मूर्तिमती बनकर हमारी इच्छानुसार रूप दिखाती है। अधिकारी को ही रहस्य की गुप्त बातें बतायी जाती हैं। जो अधिकारी है नहीं और गुप्त से गुप्त रहस्यमय रूप देखने की इच्छा करता है, यह उसकी अनधिकार चेष्टा है। सद्गुरु उसके सम्मुख अपना रूप प्रकट कर भी दें तो उसे उस पर विश्वास ही न होगा।

कौरव सभा में जब भगवान् दूत बन कर गये थे, तब अनधिकारी दुर्योधन के सम्मुख भी उन्होंने अपना विराटरूप

दिखाया था। भगवान् जानते थे, यह अश्रद्धालु है, इस पर मेरे विराट्रूप का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वहाँ जो उन्होंने अपना विराट्रूप दिखाया था, वह महाराज धृतराष्ट्र भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य विदुरजी, बाह्लीक, गुरुपुत्र अश्वत्थामा, विकर्ण तथा युयुत्सु आदि धार्मिक व्यक्तियों के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त तथा संसार को यह दर्शाने के निमित्त कि मैने मेल मिलाप कराने में अपनी ओर से शाम, दाम, दण्ड, भेद आदि सभी उपाय कर लिये। फिर भी यह नीच दुर्योधन युद्ध के ही लिये अडा हुआ है। उस सभा में विराट्रूप दिखाकर महाराज धृतराष्ट्र पर भगवान् ने अपनी परम कृपा प्रदर्शित की धृतराष्ट्र तो अन्धे थे, वे देखने में असमर्थ थे, अतः भगवान् ने उन्हें दो दिव्य नेत्र प्रदान किये और भगवान् के विराट्रूप के दर्शन करके अपने को कृतार्थ समझा।

अनधिकारी दुर्योधन तो अहंकारी था, वह अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझता था, ऐसे अनधिकारी पर उस भगवान् के विराट्रूप का भी कोई प्रभाव नहीं पडा। उसने शकुनि पुत्र उलूक के हाथों भगवान् के पास संदेश भेजा था, कि कृष्ण! तुमने हमारी सभा में जो अपना मायावी विकट रूप बना लिया था, उसे पुनः उसी रूप में प्रकट करके अर्जुन के सहित मुझ पर आक्रमण करो। इन्द्रजाल, माया तथा भयानक कृत्या ये युद्ध में अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित शूरवीरों के क्रोध और भी बढ़ा देती हैं। योद्धा उन्हें देखकर सिंहनाद करते हैं। इन मायाओं को तुमही जानते हो, सो बात नहीं। हम भी माया से आकाश में उड़ सकते हैं, अन्तरिक्ष में जाने की सामर्थ्य रखते हैं। हम रसातल फोडकर नीचे के लोकों में जा सकते हैं। इन्द्रलोक तक में प्रवेश कर सकते हैं। इतना ही नहीं हम अपनी देह में असंख्यों रूप प्रकट कर सकते

हैं, किन्तु इन मायावी प्रदर्शनों से न तो अपने अभीष्ट की ही सिद्धि हो सकती है न शत्रु ही भयभीत हो सकता है।"

दुर्योधन ने भगवान् के इस दिव्य विराट्रूप को इन्द्रजाल तथा माया का रूप ही माना क्योंकि वह अनधिकारी था, केवल धृतराष्ट्र ही सच्चे अधिकारी थे, अतः अन्धे होने पर भी उन्हें भगवान् के विराट्रूप के प्रत्यक्ष दर्शन हो सके। अर्जुन ने भगवान् से यही प्रार्थना की, कि यदि आप मुझे विराट्रूप दिखाने का अधिकारी समझते हो, तब तो मुझे वह अपना विराट्रूप दिखा दीजिये। यदि मैं उसे देखने का अनधिकारी हों तो आप मुझे उस रूप को न दिखाइये।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! भगवान् से अपना दिव्य विराट् रूप दिखाने के लिये प्रार्थना करते हुए अर्जुन कह रहे हैं—हे परमेश्वर! आपने जो अपने को समस्त जीवों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का एकमात्र कारण बताया। और आपने जो अपना इतना महान् माहात्म्य वर्णन किया वास्तव में वह सब वैसा है। आपके वचनों पर मुझे पूर्ण विश्वास है। उसमें अविश्वास की गन्ध तक नहीं। तो भी मेरी एक बड़ी उत्कट अभिलाषा है?

भगवान् ने पूछा—"वह कौन-सी अभिलाषा अवशेष रह गयी?"

अर्जुन ने कहा—"वह अभिलाषा यही है, कि मैं आपके उस दिव्य विराट्रूप का दर्शन करना चाहता हूँ। मैं आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, और तेज सम्पन्न उस दिव्य अद्भुत रूप को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। मेरी उसे देखने की बड़ी आन्तरिक इच्छा है।"

भगवान् ने कहा—"तो यह मेरे लिये कौन-सी बड़ी बात है, इतने संकोच के साथ क्यों कह रहे हो?"

अर्जुन ने कहा—"नहीं, प्रभो! आपके लिये तो कुछ भी बड़ी

बात नहीं है। आप तो निमिष मात्र में जो चाहें सो कर सकते हैं। आप सर्व समर्थ हैं। संकोच आप के सामर्थ्य की ओर से नहीं है, मुझे तो अपने अधिकारीपने के सम्बन्ध में संकोच हो रहा है। पता नहीं मैं उस दिव्य अप्रकृत विराट्‌रूप के देखने का अधिकारी हूँ भी कि नहीं। इसीलिये संकोच के सहित प्रार्थना कर रहा हूँ।"

भगवान् ने कहा—"अरे, अर्जुन! तुम कैसी बातें कर रहे हो, तुम भी अधिकारी न होगे, तो और कौन होगा?"

अर्जुन ने कहा—"हे योगेश्वर! हे समस्त सिद्धियों और योग के एक मात्र स्वामी! यदि आप मुझे अधिकारी समझते हैं, तो आप उस अपने अविनाशी तथा अव्यय स्वरूप को मुझे दिखाइये। यहीं दिखाइये। अभी दिखाइये।"

भगवान् ने कहा—"मैं तुम्हें अभी यहीं तत्काल इसी समय अपने उस स्वरूप को दिखाता हूँ, लो देखो।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! अब जैसे भगवान् अपने ही शरीर में अर्जुन को जिन-जिन रूपों को देखने को कहेंगे उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

प्रभो! तुम्हारो रूप अलौकिक दिव्य कहावै।
है वह अलख अपार न कोई देखन पावै॥
दरसन इच्छा मोइ पाथ यदि मोकूँ जानें।
है यह देखन जोग्य नाथ! यदि ऐसो मानें॥
तो अविनाशी रूप वह, मोकूँ नाथ दिखाइ दें।
या विराट शुभ रूप की, झाँकी मोइ कराइ दें॥

भगवान् द्वारा अर्जुन को अपने विराट् रूप का संक्षिप्त परिचय

[३]

श्री भगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥*

(श्री भाग० गी० ११ अ० ५, ६ श्लोक)

छप्पय

मन्द-मन्द मुसिकाय मदनमोहन मदहारी ।
पारथ तैं पुनि कहैं वचन अतिई सुखकारी ॥
तू ही तो है पात्र अरे, अरजुन ! लखि अनुपम ।
रूप अलौकिक निखिल चरन के अद्भुत उत्तम ॥
नाना आकृति के अखिल, शत सहस्र संख्या सगुन ।
सावधान ह्वैकें निरखि, रंग रूप नाना बरन ॥

---

* इस पर भगवान् ने कहा—हे पार्थ ! तू मेरे सैंकड़ों सहस्रों प्रकार के, भाँति-भाँति के, नानावर्णों, विविध आकृतियों वाले दिव्य रूपों को देख ॥५॥

हे भारत ! तुम द्वादशादित्यों को, अष्टवसुओं को, एकादश रुद्रों को,

जब किसी अद्भुत वस्तु को दिखाना होता है, तो दिखाने के पूर्व उसका परिचय करा देना अत्यन्त आवश्यक होता है। देखने के पहिले यदि उसके सम्बन्ध को सभी वस्तुओं से परिचय हो जाय, तो देखने समझने में अत्यन्त सुविधा हो जाती है, क्योंकि देखते समय तो वस्तुओं को देखते-देखते तन्मयता हो जाती है, बिना परिचय पाये यदि वस्तु को देखें भी, तो उसे पहिचान नहीं सकते। जैसे जहाँ चीकू फल नहीं होता, वहाँ यदि फलों के सहित उसे रख भी दें, तो अपरिचित व्यक्ति देखते हुए भी उसके लिये बिना देखे के समान हैं। यदि देखने के पूर्व उसे फलों के प्रकरण में बता दिया जाय, कि एक सुरंगी रंग का आलू के सदृश फल होता है, वह मायापुरी की ओर उत्पन्न होता है, खाने में बहुत मीठा होता है, तो अपरिचित व्यक्ति भी फलों में रखे उस फल को तुरन्त पहिचान लेगा।

हमें किसी अन्य देश, प्रदेश, प्रान्त अथवा जनपद में जाना है, जाने से पूर्व मानचित्र में उसके मार्गों से परिचित हो जायें, तो बहुत ही सुविधा होती है। इसी प्रकार इस विश्व ब्रह्माण्ड में अगणित वस्तुएँ है, उन सबका संक्षिप्त दिग्दर्शन इस मानव शरीर मे पिण्ड में करा दिया गया है। इसीलिये कहावत है 'जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में भी है। इस ससार मे पहिले प्रजापतियों से देवसृष्टि हुई, तब मनु, कश्यपादि से अंडज, पिंडज, स्वेदज और उद्भिज आदि चराचर की सृष्टि हुई। माता-पिता, प्रजापति, ब्रह्मा आदि ये सब सृष्टि में कारण हैं, किन्तु सबके आदि कारण वे विराट् भगवान् हैं, अतः समस्त चराचर विश्व भगवान्

दोनों अश्विनी कुमारों को, उनचास मरुतों को मेरे शरीर मे देखो तथा बहुत से पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपो को भी देखो।

के ही अंगों में निहित है, इसलिये वे विराट् कहलाते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! जब अर्जुन ने भगवान् से विराट्-रूप दिखाने की प्रार्थना की, तब भगवान् ने कहा—"अर्जुन! बहुत अच्छी बात है, मैं तुम्हें अभी इसी समय अपने शरीर में विश्व ब्रह्माण्ड के दर्शन करता हूँ।"

अर्जुन ने कहा—"भगवन्! विराट्रूप देखकर सम्भव है, मैं हक्का-बक्का हो जाऊँ, समझ भी न सकूँ कि क्या देख रहा हूँ, कृपा करके विराट्रूप दिखाने के पूर्व मुझे बता तो दीजिये आप के शरीर में मैं क्या-क्या देखूँगा?"

भगवान् ने कहा—"दक्ष प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र थे। ब्रह्माजी की आज्ञा से इन्होंने प्रजा की वृद्धि के लिये ११ सहस्र पुत्र उत्पन्न किये और वे सबके सब नारदजी के उपदेश से गृहत्यागी बाबाजी बन गये। तब उन्होंने ब्रह्माजी की सम्मति से अब के ६० कन्यायें उत्पन्न की। उन्हीं की सन्तानों से यह समस्त ब्रह्माण्ड भर गया। उन साठों में से १० धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को, भूत, अंगिरा, कृशाश्व इन तीनों को दो-दो और शेष चार ताक्ष्य को दी।

इनमें से अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि ये तेरह कश्यप मुनि की पत्नी हुईं। इन्हीं से देवता, पशु, पक्षी, अप्सरा, सर्प, बिच्छू, वृक्ष, लता, वनस्पतियाँ, राक्षस, गन्धर्व, घोड़े, गधे, दानव, असुर आदि सभी जीव उत्पन्न हुए। अतः जिसे अपना गोत्र याद न हो, वह अपना कश्यप गोत्र बता दे। क्योंकि सभी कश्यप की ही सन्तानें हैं। महर्षि कश्यप की सबसे बड़ी पत्नी अदिति के गर्भ से धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, और वामन विष्णु ये बारह

पुत्र हुए। ये ही द्वादशादित्य हैं इन सब आदित्यों को तुम मेरे शरीर में देखोगे।

आदित्यों के अतिरिक्त धर, ध्रुव, सोम, अहः, अनिल, अनल, प्रत्यूष, और प्रभास ये आठ वसु हैं इन समस्त वसुओं को भी तुम एक साथ मेरी देह में अवलोकन करोगे।

हर, बहुरूप, त्र्यंबक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रेवत, मृगव्याध, शर्व और कपालि ये एकादश रुद्र कहाते हैं। इन सबको भी तुम मेरे विराट्रूप में प्रत्यक्ष देखोगे। दोनों अश्विनी कुमार जो सूर्य के पुत्र हैं, समस्त देवताओं के वैद्य हैं, जो महाज्ञानी, सफल चिकित्सक हैं, उन्हें भी तुम मेरे शरीर में देखोगे।

सत्वज्योति, आदित्य, सत्यज्योति, तिर्यग्ज्योति, सज्योति, ज्योतिष्मान्, हरित, ऋतजित्, सत्यजित् सुषेण, सेनजित, सत्यमित्र, अभिमित्र हरिमित्र, कृत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त, धुनि, उग्र, भीम, अभियु, साक्षिप, ईदृक्, अन्यादृक्, यादृक्, प्रतिकृत्, ऋक्, समिति, संरम्भ, ईदृक्ष, पुरुष, अन्यादृक्ष, चेतस, समिता, समिदृक्ष, प्रतिदृक्ष मरुति, सरत, देव, दिश, यजुः, अनुदृक्, साम, मानुष और विश् ये उनंचास मरुत हैं। इन सब मरुतों को भी तुम मेरे शरीर में देखोगे।

अर्जुन ने पूछा—"भगवन्! और क्या-क्या मैं आपके शरीर में देखूंगा, उन सबकी सूची कृपा करके मुझे सुना दीजिये।"

इस पर हंसते हुए भगवान् बोले— हे भरतवंशावतंस अर्जुन! मेरे गिने हुए परिमित रूप हों, तो उनकी सूची भी तुम्हें सुना दूं। मेरे तो बहुत से—अनेकों—असंख्यों रूप हैं। तुमने जिन रूपों को न तो आज तक देखा है और न उनके सम्बन्ध में कभी सुना ही होगा। तुमने क्या किसी ने भी उन रूपों को आज तक न देखा होगा। वे सबके सब रूप अत्यन्त ही अद्भुत हैं, जो

आश्चर्यमय हैं। समस्त आश्चर्यों की खानि हैं, जिन्हें देखकर तुम आश्चर्य चकित हो जाओगे।

अर्जुन ने कहा—"उनकी जातियाँ तथा वर्णों की संख्या तो बता ही दें।"

भगवान् ने कहा—"हे पार्थ! मेरे दिव्य रूपों की कोई निश्चित जातियाँ नहीं। वर्णों की भी कोई संख्या नहीं। मेरे नाना प्रकार के-विविध भाँति के-असख्यों जातियाँ वाले, अगणित वर्णों वाले अनेकों आकार वाले सैकड़ों, सहस्रों असंख्यों रूप हैं। उन सबकी मैं भी गणना करने में असमर्थ हूँ, उन सबको तुम मेरे इस विराट्रूप में देखोगे।"

अर्जुन! तुम परम विस्मित हो जाओगे इसलिये मैं इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूँ, कि ससार में जो भी कुछ है उस सबको मेरे इस विराट्रूप में तुम प्रत्यक्ष दर्शन कर सकोगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भगवान् ने अत्यन्त संक्षेप में जो उन्हे दिखाना था, उसका संकेत अर्जुन का किया। अब इस अद्भुत रूप को देखने के लिये जैसे भगवान् ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान की उसका वर्णन मैं आप सबके सम्मुख करूँगा। आशा है आप इस प्रसंग को समाहित चित्त से श्रवण करने की कृपा करेंगे।"

छप्पय

भरतवंश-अवतंस! रूप तुम मेरो देखो।
है विराट यह रूप सबहिँ कूँ जामें पेखो॥
जो बारह आदित्य रुद्र एकादश दुरधर।
सबरे वसु जो आठ मरुद्गन उनंचासवर॥
दोऊ भाई अश्विनी, वैद्य कुमारनि देह मम।
लखि विराट प्रानी सकल, जो न सुने देखे प्रथम॥

अर्जुन को विराट्रूप देखने को दिव्यदृष्टि प्रदान

[४]

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥*

(श्री भा० गी० ११, अ० ७, ८ श्लो०)

छप्पय

इत उत भटकत रहत रूप सब नहीं दिखावैं ।
हैं अनन्त मम रूप वेद हू पार न पावैं ॥
विश्व चराचर सकल जीव प्रानिनि कूँ पेखो ।
सबकूँ ही इक ठाँव देह मेरी में देखो ॥
थावर जंगम जगत सब, लोक चतुरदश भूतगन ।
जो तुम चाहो देखनो, अरजुन ! देखो ममहिं तन ॥

---

* हे गुडाकेश ! आज तुम इस मेरे शरीर म एक ही स्थान में चराचर सम्पूर्ण जगत् को देखो और भी जो देखना चाहो सब इसी देह में देख लो ॥७॥

किन्तु तुम मेरे इस विराट्रूप को इन प्राकृत चक्षुओं से देखने में समर्थ नहीं हो, अतः मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि देता हूँ, जिसके द्वारा तुम मेरे ऐश्वर्य और योग शक्ति को देख सकोगे ॥८॥

स्थूल नेत्र स्थूल वस्तुओं को वह भी सीमित रूप की ही वस्तुओं को देखने में समर्थ हैं। कुछ ऐसे सूक्ष्म कीटाणु हैं, जो खुली आंख से भी नहीं दिखायी देते। वे अणु वीक्षण यन्त्र द्वारा ही देखे जा सकते हैं। प्राकृत पदार्थ प्राकृत साधनों से देखे जा सकते हैं। समय और सामर्थ्य के ऊपर भी निर्भर करता है। नयी दृष्टि वाले बालक या किशोर अपनी आखो से जितनी दूर की वस्तुओं को देख सकते है, वृद्धावस्था को पुरानी आँखें उतनी दूर की वस्तु को नही देख सकती। समय के ऊपर भी निर्भर है। सतयुग, त्रेता अथवा द्वापर के लोग जितना पुरुषार्थ कर सकते थे, उतना कलियुगी पुरुष कभी नहीं कर सकते।

ऐसी प्रसिद्धि है, कि द्रोण पुत्र अश्वत्थामा अजर अमर हैं। महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये ही तीन बच गये थे। मृत्युस्थल पर पड़े दुर्योधन ने अश्वत्थामा को अपना अंतिम सेनापति बनाया था, इसने रात्रि में सोते हुए पांडवों को अवशिष्ट सेना को, द्रुपदपुत्रो तथा द्रौपदी के पुत्रों को अधर्म पूर्वक मार डाला था। तब अर्जुन जाकर इन्हें जीवित पकड़ लाये थे। ब्राह्मण अवध्य होता है यह सोचकर इनके मस्तक में जो प्राकृत मणि थी, उसे निकाल कर इन्हें जीवित ही छोड़ दिया था। प्राकृत मणि सर्प के, गज के, मकर के मेढ़क के सियार के और किसी किसी मनुष्य के सिर में भी होती है। अश्वत्थामा के मस्तक मे प्राकृत मणि थी। अर्जुन ने जब खड्ग से उस मणि को निकाल लिया, तो इनके मस्तक में एक घाव हो गया था, सुनते हैं, वह घाव उनके मस्तक में अभी तक है। वे गंगाजी के किनारे-किनारे अलक्षित भाव से अभी तक घूमते रहते हैं किसी-किसी भाग्यशाली को अब भी उनके दर्शन हो जाते हैं। अमुक व्यक्ति को अश्वत्थामा जी के दर्शन हुए और उनसे यह वर प्राप्त

किया, ऐसी अनेकों गाथायें लोक में प्रचलति हैं, उनमें कौन-सी सत्य हैं, कौन-सी बनावटी हैं, इसका निर्णय तो वे ही कर सकते हैं, जो त्रिकालदर्शी हों, उन बहुत-सी गाथाओं में से तीन गाथायें हम यहाँ देते हैं। उनको हमने केवल सुना ही है। सत्या-सत्य की बात तो भगवान् ही जानें।

(१)

गंगा के किनारे अनूपशहर एक बहुत ही सुंदर बुलन्दशहर जनपद में स्थान है, वहाँ एक पहाड़ी वैद्य परिवार अभी तक अव-स्थित है। अनूप शहर के पन्त वैद्यों की ख्याति उन दिनों उस प्रान्त में बहुत थी। उसी वंश के एक सुप्रसिद्ध वैद्य ने बताया था, कि हमारा परिवार इतना प्रसिद्ध अश्वत्थामा जी के वरदान के ही कारण हुआ।

उन्होंने बताया—"हमारे एक पूर्वज बहुत ही प्रातःकाल गंगा स्नान को गये। वहाँ उन्हें गंगा किनारे एक बहुत ही लंबे चौड़े बलिष्ट पुरुष दिखायी दिये उन्हें देखकर वैद्यजी चकित रह गये। किन्तु उन्होंने देखा, उस व्यक्ति के मस्तक पर घाव है।" वैद्यजी तो वैद्य ही ठहरे उन्होंने उनसे पूछा—"यह आपके मस्तक पर घाव कैसे हो गया है।"

उन्होंने कहा—"ऐसे ही लड़ाई झगड़े में हो गया है।"

वैद्यजी ने कहा—"तो आप इस पर भृंगराज की पुलटिस बाँधिये।"

अश्वत्थामा जी ने कहा—"बाँधी थी, कुछ लाभ नहीं हुआ।"

तब वैद्यजी ने और भी बीसों औषधियाँ बतायी। सभी में उन्होंने यही कह दिया—"बाँधी थीं कोई लाभ नहीं हुआ।"

वैद्यजी उपासक थे, भगवत् भक्त थे, उन्हें तुरंत स्मरण हो

आया, ये तो कोई दिव्य पुरुष हैं। उनसे पूछा—"महानुभाव! आप चिरजीवी द्रोण पुत्र अश्वत्थामा तो नहीं हैं?"

हँसकर अश्वत्थामा जी ने कहा—"हाँ, मैं, अश्वत्थामा ही हूँ, अप्राकृत घाव, प्राकृत ओषधियों से अच्छा नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। तुम आज से सिद्धहस्त वैद्य हो जाओगे। तुम जिसकी भी चिकित्सा करोगे, वही अच्छा हो जायगा। तुम्हारी वंश परम्परा में भी ख्यातिनामा वैद्य होते रहेंगे। इस बात को ढाई सौ तीन सौ वर्ष हो गये तब से हमारी वंश परम्परा में एक न एक ख्यातनाम वैद्य होता ही चला आ रहा है।

(२)

दूसरी कथा विन्ध्याचल की हमने सुनी थी। विन्ध्याचल भगवती विन्ध्यवासिनी देवी का काशी प्रयाग के मध्य में सुप्रसिद्ध क्षेत्र है। उसमें एक बड़ा भारी नामी मल्ल था, दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी। कभी-कभी अश्वत्थामाजी भगवती का दर्शन करने विन्ध्याचल आते हैं।

एक दिन वह मल्ल रात्रि में दो तीन बजे गंगा स्नान को गया। वहाँ गंगाजी में अश्वत्थामाजी स्नान कर रहे थे। उनके ऐसे लंबे-चौड़े डील-डौल वाले शरीर को देखकर मल्ल भयभीत हो गया, उसने उन्हें कोई भूत समझा। तब हँसते हुए अश्वत्थामा जी ने कहा—"भयभीत मत होओ। मैं भूत प्रेत नहीं। मैं तो महाभारत वाला अश्वत्थामा हूँ।"

मल्ल को बड़ा हर्ष हुआ। उसने उनके चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उन्हें अनुकूल देखकर हाथ जोड़कर बोला—"महाराज! मुझे भी दिव्य अस्त्र चलाना सिखा दो।"

अश्वत्थामा जी ने कहा—"भैया, दिव्य अस्त्रशस्त्रों को सीखने के लिये देह भी दिव्य चाहिये। तुम उन्हें नहीं सीख सकते।"

इस मल्ल को तो अपने बल का, शारीरिक शक्ति का बड़ा अभिमान था, अतः इसने बहुत आग्रह किया, नहीं भगवन् ! एक आध अस्त्र तो दिखा ही दो।"

तब अश्वत्थामा जी ने कहा—"अच्छा, किनारे पर मेरा धनुष रखा है, उसे उठा लाओ।"

वह दौडा-दौडा गया। उसने धनुष को उठाना चाहा, किन्तु वह अपने स्थान से टस से मस भी नहीं हुआ। इसने अपना पूरा बल सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, किन्तु धनुष हिला तक नहीं। तब हँसकर अश्वत्थामाजी ने कहा—"जब तुम धनुष को उठा ही नहीं सकते, तो अस्त्र-शस्त्र क्या सीखोगे। जाओ, तुम इधर के नामी मल्ल होगे, दूर-दूर तक तुम्हारी ख्याति होगी, तुम्हें कोई परास्त न कर सकेगा।"

(३)

तीसरी कहानी उस सम्भल गाँव की है, जहाँ भगवान् का कल्कि अवतार होने वाला है। वहाँ पर प्रातः काल किसी वेदज्ञ ब्राह्मण को अश्वत्थामा जी के दर्शन हुए। उनकी विद्वत्ता और वेद पाठ से अश्वत्थामा जी बड़े प्रसन्न हुए और उनसे कुछ वर माँगने को कहा।

ब्राह्मण ने कहा—"हमने महाभारत में पढ़ा है, आप ब्रह्मास्त्र के ज्ञाता हैं, मुझे ब्रह्मास्त्र सिखा दीजिये।"

हँसते हुए अश्वत्थामा जी ने कहा—देखो, भैया, वह समय और था, वे व्यक्ति और थे। सब कोई ब्रह्मास्त्र नहीं सीख सकता। उसके लिये पात्रता की आवश्यकता है। कम से कम दश सहस्र हाथियों का बल जिसके शरीर में हो। सद्गुण सम्पन्न, सदाचारी हो, वही इसके सीखने का अधिकारी हो सकता है। कलिकाल में इन दिव्य अस्त्रों को सीखना असम्भव है।

. ब्राह्मण अत्यन्त ही हठ करने लगा। मुझे सिखा ही दो। तब उन्होंने एक छोटा सा धनुष बनाया। एक नीम की सींक को मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे दिया कि इसे बाण पर पूरी शक्ति से चढ़ाओ।

वह ज्यों ही उसे बाण पर रख कर खींचने लगा, त्यों ही उसका शरीर आकाश में उड़ने लगा। अश्वत्थामा जी ने उसे पैर पकड़ कर नीचे खींचा, उसके हाथ से धनुष छीन लिया। और बोले—"जब तुम सींक को ही खींचने पर पृथ्वी छोड़ गये, तो ब्रह्मास्त्र क्या सीखोगे। देखो, दिव्य अस्त्र के लिये दिव्य शरीर दिव्य शक्ति दिव्य सामथ्य चाहिये। कलियुगी जीवों में वह सामार्थ्य कहाँ है।

इन कथाओं के कहने का अभिप्राय इतना ही है, कि अप्राकृत रूप को प्राकृत आँखें देख नहीं सकती। उसी प्रकार भगवान् के दिव्य विराट्रूप दर्शन के लिये दिव्य दृष्टि चाहिये। दिव्य दृष्टि उसी को प्राप्त हो सकती है, जिसे कृपा करके श्याम सुन्दर प्रदान कर दें। अपने सच्चे सखा सुहृद, मित्र तथा शिष्य अर्जुन को दया करके भगवान् ने दिव्य दृष्टि प्रदान की थी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अपना विराट्रूप दिखाने के पूर्व उसका परिचय कराते हुए भगवान् अर्जुन से कह रहे हैं—हे गुडाकेश! तुम मेरे विराट् रूप के देखने के अधिकारी हो। क्योंकि तुमने निद्रा पर विजय प्राप्त कर ली है। भूख और नींद ये ही दो ऐसी व्याधियाँ हैं जो प्राणी को दिव्यता से हटाती हैं। तुमने निद्रा को जीत लिया है अतः तुम मेरे विराट्रूप को देख सकोगे। तुम मेरे उस दिव्य रूप को देखोगे, जिसे सर्व साधारण लोग कभी देख नहीं सकते। तुम अभी यहीं मेरे इसी शरीर में ही स्थावर जङ्गम समस्त चराचर जगत् को बात की

बात में देख लोगे, जिसे सहस्र कोटि वर्षों तक घूमते रहने पर भी तुम नहीं देख सकते। तुम संसार के सुख दुख, जय पराजय समस्त बीती हुई वर्तमान तथा होने वाली घटनाओं को भी मेरे शरीर में देख सकोगे। इस मेरे विराट्रूप के देखने से तुम्हारे समस्त संशय मिट जायँगे। फिर तुम्हारे लिये देखने को कुछ भी अवशेष न रह जायगा।

अर्जुन ने कहा—"मैं अपने को सबसे बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ, जो आपने मुझे विश्वरूप दर्शन का अधिकारी समझा। मैं आपकी कृपा का भाजन बन सका।"

भगवान् कहा—"अधिकारी तो तुम हो ही, किन्तु एक ही तुममें त्रुटि है ?"

अर्जुन ने पूछा—"वह कौन-सी त्रुटि है, स्वामिन् ?"

भगवान् ने कहा—"त्रुटि यह है, कि मेरा विराट्रूप तो दिव्य अप्राकृत हैं और तुम्हारी आँखें प्राकृत है। दृष्टि साधारण है। इस साधारण दृष्टि द्वारा मेरे असाधारण रूप को देखने में समर्थ न हो सकोगे।"

अर्जुन ने कहा—"यह त्रुटि तो सबसे बड़ी त्रुटि है। जब मैं अपनी दृष्टि से देख न सकूँगा, तो आपका विराट्रूप दिखाना व्यर्थ ही हो जायगा।"

भगवान् ने कहा—"व्यर्थ कैसे हो जायगा जी! अपने दिव्य विराट् रूप को देखने के लिये मैं तुम्हें दृष्टि भी दिव्य ही दिये देता हूँ। जिससे तुम मेरे अप्राकृतिक दिव्य विराट्रूप के उसके द्वारा दर्शन करने में समर्थ हो सको।"

अर्जुन ने कहा—"प्रभो! जो कृपालु आटा दाल देता है, वही उसे बनाने को चार कन्डा भी दे देता है। आप जब दिव्य रूप कृपा करके दिखावेंगे तो दिव्य दृष्टि भी देंगे ही।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार दिव्य दृष्टि देने की प्रतिज्ञा करके भगवान् ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर जैसे रूप का दर्शन कराया, उसका वर्णन जैसे संजय ने धृतराष्ट्र से किया, उसको मैं आप सब को आगे बताऊँगा।"

छप्पय

मेरो प्राकृत रूप नहीं अप्राकृत अरजुन।
तेरे प्राकृत नेत्र न इनितैं समरथ देखन॥
दिव्य चक्षु हौं देउँ उनहिँ तैं देखि सकोगे।
दिव्य दृष्टि तैं देखि फेरि रनतैं न भगोगे॥
पारथ ! तू अब सम्हरि जा, दिव्य रूप दिखलाउँगो।
ईश्वरीय शक्ती सहित, दरशन तोइ कराऊँगो॥

विश्वरूप दर्शन (१)

[५]

सजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥*

(श्री भग० गी० ११ अ० ९, १०, ११ श्लोक)

छप्पय

कौरव कुल के अधिप सुनत धृतराष्ट्र सुबानी ।
फेरि भयो का सूत ! बताओ तुम अति ज्ञानी ॥
संजय बोले—भूप ! सुनाऊँ कथा अगारी ।
निज विराट् ज्यों रूप दिखाये श्री बनवारी ॥
महायोग ईश्वर परम—रूप विराट बनायकें ।
लगे दिखावन पार्थ कूँ, निज ऐश्वर्य दिखायकें ॥

---

* राजा धृतराष्ट्र से सजय कह रहे हैं—राजन् ! ऐसा कहकर महायोगेश्वर श्रीहरि ने अर्जुन को अपना परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखाया ॥९॥

भगवान् का रूप व्यष्टि भी है और समष्टि भी है। उसमें समस्त संसार के चराचर जीव व्याप्त हैं, उनका पृथक् अस्तित्व नहीं। जैसे कोई साधु है, उसकी बड़ी-बड़ी जटायें एँड़ी तक लम्बी हैं। उन्हें वह एकत्रित करके बाँध लेता है, तो सबको वह मस्तक पर एक जटा ही देखती है, किन्तु उसमें कुल बुलाते असंख्यों जूएँ हैं उन्हें तो वही देख सकता है, जिसे साधु दिखाना चाहे। इसी प्रकार समस्त विश्व ब्रह्माण्ड के स्थावर जंगम जीव भगवान् के रोम कूपों में विहार कर रहे है। विश्वरूप भगवान् अपने इस रूप को सबको नहीं दिखाते। अर्जुन जैसे अपने किसी अंतरङ्ग भक्त को ही दिखाते हैं।

कौरव सभा में जब भगवान् धर्मराज के दूत बनकर गये थे, तब दुर्योधन ने सोचा—"पांडवों से यदि श्रीकृष्ण को पृथक् कर दिया जाय, तो फिर पांडवों का युद्ध करने का साहस ही न होगा! क्यों न मैं श्रीकृष्ण को यहीं बन्दी बना लूं। अब अच्छा अवसर है।"

श्रीकृष्ण को उसकी दुर्भावना का पता चल गया, वे तो सर्वान्तिर्यामी हैं, अतः उन्होंने कौरव सभा में भी अपना विराट्रूप दिखाया था। कौरव सभा में विराट्रूप दिखाने के अनेकों कारण थे। न तो दुर्योधन ने उनसे विराट्रूप दिखाने की प्रार्थना ही की थी, न भगवान् विराट्रूप दिखाकर उसे अपना भक्त हा

वह ऐसा स्वरूप था, जिसमें अनेक मुख और नयन थे, अनेक अद्भुत दर्शनवाले, अनेक दिव्य भूषणों से युक्त, अनेक दिव्य शस्त्रों से उद्यत ॥१॥

अनेक दिव्य मालाओं और वस्त्रों को धारण किये हुए, दिव्य गन्ध और अनुलेप से अनुलिप्त, सर्व आश्चर्यमय, अनन्त विराट् स्वरूप उन विराट् भगवान् को देखा ॥११॥

बनाना चाहते थे। वे तो महाभारत कराना ही चाहते थे साथ ही अपने को निर्दोष भी सिद्ध करना चाहते थे। अतः विराट्रूप दिखाने में उनके मुख्य कारण ये थे।

(१) धृतराष्ट्र (२) द्रोणाचार्य (३) भीष्म पितामह (४) विदुरजी (५) संजय तथा (६) तपोधन समस्त महर्षिगण विश्वरूप देखने के अधिकारी थे, उन पर कृपा करके विश्वरूप दिखाया। भगवान् ने इन लोगों को उनकी प्राकृत आँखों में ही दिव्य दृष्टि दे दी। धृतराष्ट्र के प्राकृत आँखें नहीं थीं, उनकी प्रार्थना पर भगवान् ने उन्हें उस समय विश्वरूप दर्शन करने को दो नेत्र दे दिये। उन नेत्रों में दिव्य दृष्टि भी दे दी। अतः अन्धे होने पर भी वे भगवान् का दर्शन कर सके। शेष राजाओं की दिव्य दृष्टि न होने से उन्होंने अपने भय के कारण नेत्र बन्द कर लिये अतः वे भगवान् का दर्शन न कर सके।

(२) विराट्रूप दिखाकर भगवान् ने लोक में यह प्रकट किया, कि युद्ध बन्द कराने के मैं सभी उपाय कर चुका। फिर भी दुष्ट दुर्योधन माना नहीं।

(३) तीसरा कारण यह कि भगवान् ने दिखा दिया जो दिव्य वस्तु पात्र को महान् प्रतीत होती है, वही अपात्र को तुच्छ लगती है, उस पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(४) चौथा यह कि अभिमानी के सम्मुख भगवान् भी आ जायँ तो वह उनसे भी नहीं दबता। यद्यपि भगवान् ने दुर्योधन को दिव्य दृष्टि नहीं दी थी, फिर भी उसने आँखें बन्द नहीं कीं। उसने भगवान् के विराट्रूप के दर्शन किये, किन्तु उस पर उस दर्शन का उलटा ही प्रभाव पड़ा। उसने उसे इन्द्रजाल तथा माया ही माना। दिव्य दृष्टि के बिना तो कोई भगवान् का दर्शन कर नहीं सकता। अतः भगवान् ने उसे अभिमान बढ़ाने वाली दृष्टि

दी। जिससे उसकी भक्ति न बढ़कर अभिमान की ही वृद्धि हुई।

कौरव सभा के विराट्रूप में और गीता वाले विराट्रूप में अंतर है। गीता में तो अर्जुन की प्रार्थना पर भगवान् ने अपना विश्वरूप दिखाया उसमें भगवान् ने अपना काल रूप दिखाया। अनेक रूपों को चबाते हुए निगलते हुए संहार करते हुए सबको भस्म करते हुए दिखाये। कौरव सभा में यह दिखाया कि न तो मैं अकेला ही हूँ और न पांडव मुझसे पृथक् ही हैं, मैं सर्व रूप हूँ। पांडव यहाँ भी मेरे साथ हैं। विश्व ब्रह्माण्ड मेरे साथ है। इसीलिये कौरव सभा में भगवान् ने पहिले खिलखिला कर उच्च स्वर से अट्टहास किया। तब उनके शरीर में ब्रह्मा, रुद्र तथा समस्त देव दिखायी देने लगे। समस्त लोकपाल उनकी बाहुओं में स्थित थे। मुख से अग्नि की लपटें निकल रही थीं। आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनी कुमार, इन्द्र, मरुद्गण, विश्वेदेवा यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षस तथा विभिन्न अंगों से समस्त देव उपदेव प्रकट हो गये।

उनकी दोनों भुजाओं से बलराम और अर्जुन का प्रादुर्भाव हुआ। भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव ये उनके पृष्ठ भाग में दीखने लगे। हाथों में प्रद्युम्न, तथा अधक और वृष्णिवंशी वीर दिखाई देने लगे। भगवान् की उठी हुई भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, हल और नन्दक नामक खड्ग ये आयुध देदीप्यमान रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। उनके नेत्रों से नासिका छिद्रों से और दोनों कानों से भयंकर अग्नि की लपटें जो धूम से संयुक्त थीं चारों ओर निकलती हुई दिखायी देने लगीं इस प्रकार का वह भयंकर विराट्रूप था।

अब अर्जुन ने कैसा रूप देखा, इसका वर्णन संजय ने धृत-राष्ट्र से इस प्रकार किया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब भगवान् ने अर्जुन को विराट्रूप दिखाना आरम्भ किया, तो उसका वर्णन करते हुए संजय धृतराष्ट्र से कह रहे हैं—राजन् ! भगवान् ने जब अर्जुन को दिव्य दृष्टि दे दी तब महायोगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अर्जुन से कहा—'अर्जुन । तू मेरे दिव्य रूप को देखा ।" बस, इतना कहते ही उन्होंने उसको अपना दिव्य ईश्वरीय रूप दिखाना प्रारंभ कर दिया । वह रूप कैसा था–उसके अनेकों मुख थे । भगवान् के श्री अंग में असंख्यों मुख ही मुख दिखायी देने लगे । उन मुखों में असंख्यों नेत्र चमक रहे थे । उन नयनों में अनेकों भाव प्रकट हो रहे थे, असंख्यों विस्मयो का दर्शन हो रहा था । भगवान् के अगणित अङ्ग दृष्टिगोचर हो रहे थे । उनमें भाँति-भाँति के असंख्यों दिव्य आभूषण धारण किये हुए थे । वे असंख्यों हाथ अगणित दिव्य अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित थे । भगवान् के अनेकों अङ्गों में असंख्यो दिव्य मालायें सुशोभित हो रही थी । उन दिव्य मालाओं की दिव्य गन्ध दशों दिशाओं में फैल रही थी। अङ्गो में जो अनुपम आभूषण थे, वे सबके सब दिव्य थे। अप्राकृतिक धातुओं से निर्मित थे । उन अङ्गों में अद्भुत अनुपम अनुलेपन लगे हुए थे । अङ्गों की कान्ति अद्भुत थी, अनुपमेय थी सर्वाश्चर्यमयी थी, विविध चित्र विचित्रताओं से संयुक्त थी। उन दिव्य रूप भगवान् की छटा अद्भुत थी । उन अनन्त महा प्रभु की प्रभा अप्रमेय थी । उन मुकुन्द की देह में सब ओर अगणित आनन थे । वे सर्वतोमुख थे ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार संजयजी, महाराज धृतराष्ट्र के प्रति भगवान् के विश्वरूप का वर्णन कर रहे हैं, अब आगे उनकी आभा आदि का जैसे वर्णन करेंगे, उसको मैं आप से आगे कहूँगा ।"

छप्पय

देखे अरजुन मुख अनेक नयननियुत अद्भुत।
भाँति-भाँति के दिव्य भूषनिन सकल सुसज्जित॥
करनि माँहि अति दिव्य अस्त्र शस्त्रनि कूँ धारें।
दिव्य गन्ध अनुलेप लगाये वस्त्र सम्हारें॥
अति अद्भुत आचारजयुत सीमा रहित असीम हैं।
दशहु दिशनि महँ मुख अखिल, देव अनन्त प्रवीन हैं॥

गलमहँ माला दिव्य सलोनी सरल सुगन्धित।
सबहिँ तननि अनुलेप लगाये श्रीहरि प्रमुदित॥
कोई आवत जाइ कोइ काऊ कूँ खावै।
कोई जावै दौरि लौटि कोई इत आवै॥
सुने न देखे जो चरित, सो सबई आचरज युत।
वे विराट भगवान की, देहनि में घूमत मुदित॥

विश्वरूप दर्शन (२)

[६]

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।।
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।।
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ।।*
(श्री भग० गी० ११ अ० १२, १३, १४ श्लो०)

छप्पय

दम-दम दमकत दशहु दिशनि में तेज अनूपम ।
दिव्य तेज अति प्रबल प्रकाशित नभ में उत्तम ।।
उपमा कातें करें विश्वप्रभु देह दिखावत ।
चकाचौंध है दीठि तेज सब ओर प्रकाशित ।।
नभ में एकहि संग में, उदित होहिं रवि सहस ज्यों ।
ग्वाऊ तें अगनित अधिक, विश्वरूप की प्रभा त्यों ।।

---

* मानो आकाश में सहस्रों सूर्य एक साथ ही उदय हो गये हों। उनका जैसा प्रकाश होता हो, वह प्रकाश भी उस विराट् भगवान् के प्रकाश के समान कदाचित् ही हो सके ।।१२।।

साहित्य शास्त्र में उपमा का बड़ा महत्त्व है जो कवि जितनी ही सुंदर जितनी ही अधिक उपमायें दे सकता है उतना ही बड़ा कवि माना जाता है। उपमा प्रायः एक देशीय होती है। और सादृश्य में दी जाती है। जैसे 'चन्द्रमुखी' यह मुख को चन्द्रमा के साथ उपमा दी गयी है। मुख में चन्द्रमा के सम्पूर्ण गुण नहीं है। समता इतनी ही है, कि जैसे शरद का पूर्ण चन्द्र कान्तिवान सुंदर होता है, उसे देखकर सभी को प्रसन्नता होती है वैसे ही इस नायिका के मनहर कान्तिवान मुख को देख कर सब प्रसन्न होते है। इसी प्रकार नयनों को कमल से, खंजन पक्षी के मृगी के नयनों से उपमा दी जाती है।

उपमेय वस्तु के कुछ भी सदृश वस्तु हो तो उससे उपमा दी जाती है, किन्तु जब उपमेय के समान दूसरी कोई वस्तु ही न हो तो उसी को उससे ही उपमा दी जाती है, उसे अन्वयालङ्कार कहते हैं। जैसे आदि कवि वाल्मीकि जी ने राम रावण के युद्ध की उपमा दी है। उन्होंने कहा है—आकाश, आकाश के ही सदृश है समुद्र, समुद्र के ही तुल्य है, उसी प्रकार राम रावण का युद्ध राम और रावण के युद्ध के ही सदृश है। अर्थात् दोनों का युद्ध अनुपमेय है, उसको कोई तुलना नहीं हो सकती। किसी भी पदार्थ से समानता नहीं हो सकती।

अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त हुए सम्पूर्ण जगत् को उन देवाधिदेव विराट् भगवान् के शरीर में एक ही स्थान पर देखा ॥१३॥

तदनन्तर विस्मय से आविष्ट हुआ, जिसका देह प्रेम से रोमाञ्चित हो गया है, वह अर्जुन उन देवाधिदेव को शिर से प्रणाम करके दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधे हुए कहने लगा ॥१४॥

कुछ कवि अनुपमेय की असम्भावित रूप से उपमा देते हैं। माघ कवि ने श्री कृष्णचन्द्र जी के वक्षःस्थल पर क्रीड़ा करते हुए दो हीरों की उपमा देते हुए कहा है जैसे आकाश में गङ्गाजी के दो प्रवाह अठखेलियाँ कर रहे हों। एक तो आकाश में गङ्गाजी के प्रवाह की अठखेली ही असम्भव है फिर एक नहीं दो दो। जिस प्रकार हीरों की गङ्गा प्रवाह से उपमा देकर उनकी अनुपमेयता व्यक्त की है उसी प्रकार आकाश में एक साथ सहस्रों असंख्यों सूर्य का उदित होना असम्भव है। असंभव मान लो किसी प्रकार सम्भव भी हो जाय तो भी कवि का कहना है, कि भगवान् की आभा उन समस्त सम्मिलित असंख्यों सूर्यों के सदृश हो भी सकेगी कि नहीं इसमें भी संदेह है। ऐसा कहकर कवि ने अभूतोपमा अतिशयोक्ति की उत्प्रेक्षा की है। अर्थात् यह उपमा भी पूरी नहीं सम्भव नहीं। भगवान् की दीप्ति निरुपम है अनुपमेय है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! संजय जी भगवान् के विराट् रूप के सम्बन्ध में बताते हुए कह रहे हैं—"राजन! उन विराट् भगवान् की असम्भावित अनुपम उपमा की तुलना किससे की जा सकती है। यदि अन्तरिक्ष में अगणित असंख्यों सूर्य समूह एक साथ ही उदित हो जायँ तो उन सब की मिलकर जो प्रभा होगी उस प्रभा के सदृश उन महात्मा की प्रभा थी। फिर अपने आप ही सन्देह प्रकट करते हुए कहते हैं—सम्भव है उन असंख्यों सूर्यों की सम्मिलित प्रभा भी उनकी प्रभा की बराबरी सम्भवतया न कर सके। अर्थात् उन विराट भगवान् की दिव्य प्रभा अनुपमेय है। अभूतोपरूपा है, उनकी उस समय की प्रभा की बराबरी किसी से की ही नहीं जा सकती। जैसे आकाश,

आकाश के ही सदृश है, समुद्र, समुद्र के ही सदृश है, उसी प्रकार भगवान् विराट् की प्रभा उन्हीं की प्रभा के सदृश थी।

संजय कह रहे हैं—"राजन्! अर्जुन से भगवान् ने कहा था, तुम यहीं पर मेरे इसी शरीर में सम्पूर्ण स्थावर, जङ्गम चराचर जगत् को देखोगे। उसी बात को सत्य करते हुए भगवान् ने अपने उसी शरीर में देवता, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मनुष्यादि सम्पूर्ण जगत को एक ही स्थान में स्थित, अनेक प्रकार से प्रविभक्त उसी क्षण दिखाया। अर्जुन परम विस्मित भाव से यह सब देख रहा था भगवान् ने स्वयं ही कृपा करके अर्जुन को अधिकारी समझ कर अपना विराट् रूप दिखाया था, और उन्होंने बिना माँगे कृपा के वशीभूत होकर उसे देखने को दिव्य दृष्टि भी प्रदान की थी, इससे अर्जुन उस विराट् रूप को देखकर जैसे कौरव सभा में अन्य राजाओं ने भयभीत होकर आँखें बन्द कर ली थीं, वैसे अर्जुन ने भय से आँखें बन्द नहीं की। वे उस अद्भुत आश्चर्यमय रूप को देखकर तनिक भी विचलित नहीं हुए। मैं अर्जुन हूँ और ये विराट्रूप दिखाने वाले मेरे सच्चे सुहृद, सम्बन्धी सारथी, गुरु और परब्रह्म श्री कृष्णचन्द्र जी हैं इन बातों को भी भूले नहीं। वह हड़बड़ाये भी नहीं। वहीं अपने स्थान पर डटे रहे। अत्यन्त विस्मित होकर उस अत्यद्भुत रूप के दर्शन करते रहे। प्रेम के कारण उनका सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो रहा था। उन्होने उन विश्व रूप भगवान् को शिर झुकाकर साष्टांग प्रणाम किया, फिर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँध कर परम भावातिरेक के सहित उनकी स्तुति करने लगे।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! अब अर्जुन जैसे विश्व रूप विराट् भगवान् की भक्ति सहित स्तुति करेंगे, उस प्रसंग को

मैं आपसे आगे कहूँगा। आशा है आप इस पावन प्रसंग को प्रेम पूर्वक श्रवण करने की कृपा करेंगे।

छप्पय

पांडुपुत्र ने लखे विभाजित जीव चराचर।
देव मनुज पशु पत्ती भूत अरु लोक परावर॥
सब लोकनि के भोग दिव्य अरु अधम भाव के।
पुनि सब निरखे मिले जुले फिरि अथक भाव के॥
पांडुपुत्र अरजुन लखे, इस्थित एकहिँ गेह महँ।
देव-देव उन देवकी–नन्दन की ही देह महँ॥

चकित-चकित ह्वै पार्थ कृष्ण की देह निहारैं।
तामें लखि ब्रह्माण्ड कहूँ का सोचि विचारैं॥
अतिई विस्मित भयो रोम तनके सब पुलकित।
लखि प्रकाशमय देह प्रेम हिय माहीं प्रकटित॥
श्रद्धा भक्ति समेत अति, देव–देव के गहि चरन।
करि प्रनाम सिर तैं हरषि, हाथ जोरि बोल्यो बचन॥

अर्जुन द्वारा विश्वरूप भगवान् की स्तुति (१)

[७]

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥*
(श्री भ० गी० ११ अ० १५, १६ श्लोक)

छप्पय

देव ! तिहारी देह माँहि, सब जगकूँ देखूँ ।
जाई में ब्रह्माण्ड विश्व सबरे कूँ पेखूँ ॥
देव कोटि तैंतीस निहारूँ सब भूतनि कूँ ।
जो जग पालैं रचैं करैं लय लखूँ सबनि कूँ ॥
कमलासन ब्रह्मा सहित, महादेव ऋषिगन सकल ।
सबहिँ जाति के जो सरप, निरखूँ सबकूँ एक थल ॥

---

* अर्जुन स्तुति करते हुए कह रहे हैं—हे देव ! आपके शरीर में मैं सम्पूर्ण देवों को, तथा विशेष भूत समुदाय को, कमल पर बैठे ब्रह्माजी को, शिवजी तथा सभी ऋषियों को और दिव्य सर्पों को देख

अनन्त महाप्रभु के सम्बन्ध में जो भी कुछ कहा जाय वह सब अपर्याप्त है, क्योंकि कथन जो होगा वह तो अन्तवन्त होगा। एक जिह्वा वाले मनुष्य की तो बात ही क्या है। तीन सिर वाले विश्वरूप, चार सिर वाले ब्रह्मा, पाँच सिर वाले रुद्र, छै सिर वाले सोम कार्तिकेय, दश सिर वाले दशानन तथा सहस्र सिर वाले शेषनाग भी उनकी महिमा को पूर्णरीत्या गान करने में असमर्थ हैं। भगवान् को कोई बड़ी जाति वाला, बड़े धन वैभव वाला, बड़ी विद्या बुद्धि वाला, बड़ी तपस्या वाला देखना चाहे तो नहीं देख सकता। भगवान् को तो वही देख सकता जिस पर वे कृपा करें, जिसे वे अनुग्रह करके अपना रूप दिखाना चाहें। माता यशोदा छड़ी लेकर हाथ में रस्सी लेकर बाँधने को चली। उन्होंने विचारा नहीं, जो समस्त बन्धनों से रहित हैं वह भला बँध कैसे सकता है, जिसे बड़े-बड़े नाग, देव दैत्य, लोकपाल अपने भावों से नहीं बाँध सकते वह रस्सी से कैसे बँध सकता है। जिससे सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि सब भयभीत होकर अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं. उसे यह तनिक सी छड़ी क्या भयभीत कर सकती है, जिसे पवन, गरुड़ आदि महावेगवान् पकड़ने में असमर्थ हैं उसे व्रज की गोपी कैसे पकड़ सकती है। इन सब बातों का विचार न करके माता रस्सी लेकर छड़ी घुमाती हुई अपने भारी मरकम सीमित शरीर से कृष्ण को पकड़ने को, उन्हें बाँधने को दौड़ी। श्रीकृष्ण भी दौड़े।

रहा हूँ ॥१५॥

हे विश्वेश्वर! आपको मैं अनेक हाथ, उदर और नेत्रों वाला तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देख रहा हूँ। हे विश्वरूप! आपके अन्त, मध्य और आदि को मैं नहीं देखता हूँ॥१६॥

अब सोचिये जो अनन्त है, सर्वत्र परिपूर्ण है, व्याप्त है, वह कहाँ दौड़ेगा और दौड़कर जायगा भी कहाँ ? जाना तो वहाँ होता है जहाँ पहिले से न हों, श्रीकृष्ण तो जहाँ जाओ वहाँ पहिले से ही डटे बैठे हैं। अतः वे अपने घर में दौड़े और दौड़ते भी कहाँ ? माता का शरीर तो स्थूल था। अतः वे थक गयीं श्रीकृष्ण स्थूलता कृशता से परे है, अतः वे थके नहीं। परन्तु माता को थकी देख कर द्रवित हो गये। कृपा के अधीन हो गये। "कृपयासीत्‌बन्धने" माता के प्रयत्न से नहीं बँधे। माता के पुरुषार्थ द्वारा नहीं पकड़े गये। प्रेम के भी बन्धन में नहीं बँधे। साधारण रस्सी से ही बँध गये। क्यो बँध गये ? क्योंकि वे कृपा के सागर हैं, कृपालु हैं। कृपा ने कहा—अजी बँध जाओ। कृपा की बात वे टाल नहीं सकते थे, अतः कृपा के कहने से बँध गये। क्योंकि वे परम कृपामय जो ठहरे।

इसी प्रकार भगवान् ने कृपा करके अर्जुन को अपना दिव्य विश्व विराट्‌रूप दिखाया। भगवान् के इस अभूतपूर्व रूप को देखकर अर्जुन परम विस्मित होकर उनकी स्तुति करने लगा। और करता ही क्या, स्तुति ही एक आधार है। अपनी स्तुति संसार में सभी को अच्छी लगती है। जो वस्तु अपने को अच्छी लगती है उसी को जीव भगवान् को प्रदान करता है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! जब अर्जुन ने भगवान् का विराट्‌रूप देखा, तो वह विश्वरूप भगवान् की स्तुति करते हुए कहने लगा—"भगवन् ! आपको अब तक लोग अलख अगोचर कहा करते थे। आपको सभी इन्द्रियों का अविषय बताते थे, किन्तु आज तो मैं प्रत्यक्ष अपनी इन्हीं आँखों से आपको देख रहा हूँ। आप कहेंगे भौतिक चक्षुओं से भौतिक पदार्थ ही देखे जा सकते हैं, तो हे देव ! मैं तो आपके दिव्य रूप के दर्शन कर

रहा हूँ। आप कह सकते हैं कहीं अन्यत्र तुम मेरे दिव्यरूप को देख रहे होगे, किसी इन्द्रियातीत दिव्यलोक में यह सब देख रहे होगे। सो बात भी नहीं मैं तो आपके इसी श्रीकृष्ण देह में आपके दिव्यरूप की झाँकी कर रहा हूँ। मुझे किसी अन्य दिव्य-लोक में जाना नही पड़ा इसी आपके शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और इस ब्रह्माण्ड के मुख्य-मुख्य अधिपति, मुख्य-मुख्य देवताओं को भी प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। स्थावर जंगम, चर-अचर, अनेक आश्रयों वाले भूत संघों को देख रहा हूँ। मैं साक्षात् भगवान् विष्णु को भी आपके शरीर में देख रहा हूँ। मैं यह भी देख रहा हूँ कि इनकी नाभि से एक दिव्य कमल निकला हुआ है, उस पर आसन लगाये भगवान् पद्म संभव कमलासन ब्रह्माजी विराजमान हैं। मैं शिवजी को भी देख रहा हूँ, जो संसार के संहार मे सर्वथा समर्थ हैं। समस्त ऋषियों को भी देख रहा हूँ, समस्त दिव्य-दिव्य उरग अर्थात् सर्पों को भी देख रहा हूँ। आपके इस सीमित शरीर में तो अनन्त असीम संसार दीख रहा है।

प्रभो! हे विःवेश्वर! हे विश्वरूप! मैं आश्चर्य चकित होकर, हक्का-बक्का सा होकर परम घबराहट के साथ आपके उस रूप का दर्शन कर रहा हूँ, जिसमें चारों ओर असंख्यों बाहु ही बाहु हैं। अनन्त उदर ही उदर है, अगणित आनन ही आनन हैं। अनगिनती नेत्र ही नेत्र दिखायी देते हैं। आपके रूप का कहीं अन्त नहीं, कहीं अवसान नहीं, कहीं परिसमाप्ति नहीं। चारों ओर देखता ही चला जा रहा हूँ, कहीं उसका अन्त ही नहीं पा रहा हूँ, फिर लौटकर आदि की खोज करता हूँ, तो इसका कहीं आदि का भी पता नहीं चलता। जिसके आदि अन्त का ही पता नहीं उसके मध्य का तो पता चल ही कैसे सकता है? अतः मैं

तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूँ। कहाँ से देखूँ, कहाँ तक देखूँ, कहाँ पहुँच कर विश्राम करूँ। जिधर देखता हूँ, जिधर दृष्टि दौड़ाता हूँ, उधर आपही आप दृष्टिगोचर होते हैं। चित्र विचित्र भाँति के आपके रूप दिखायी दे रहे हैं, मुझे सर्वत्र आप की ही आभा दिखायी दे रही है।

सूतजी कह रहे हैं—मुनियो! परम विस्मित होकर सर्वत्र भगवान् को ही देखकर अर्जुन जी और विश्वरूप भगवान् की स्तुति करेंगे उसका वर्णन मैं आपसे आगे करूँगा।

छप्पय

हे विश्वेश्वर! विश्वरूप महँ भाँति-भाँति के।
थावर जंगम जीव चराचर विविध जातिके॥
सबकी बाहु अनेक उदर अति अगनित दीखत।
अनगिनतिनि मुख नयन चहुँदिशि होत प्रकाशित॥
निरखूँ रूप अनन्त इत, उपमा जाकी जग नहीं।
आदि अन्त अरु मध्य नहिं, विश्वरूप दीसत कहीं॥

अर्जुन द्वारा विश्वरूप भगवान् की स्तुति (२)

[८]

किरीटिनं गदिनं चक्रिणंच तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥*

(श्री भग० गी० ११, भ० १७, १८ श्लो०)

छप्पय

प्रभो ! निहारूँ तुम्हें मुकुटयुत गदा सहित कर ।
लिये सुदरसन चक्र प्रकाशित तेजपुंज वर ॥
जैसे अगिनि अनन्त प्रज्वलित होहिँ एक थल ।
सूर्य-ज्योति के सरिस प्रकाशित प्रभु प्रचंड तल ॥
अप्रमेय द्युति आपु की, प्रभा न कोई करि सके ।
तुमरे बिनु जा जगत की, जरनि नाथ ! को हरि सके ॥

---

* आपको किरीट, गदा और चक्रधारी देख रहा हूँ, सब ओर से प्रकाशमान तेज के राशि, प्रज्वलित अग्नि सूर्य के समान, ज्योतियुक्त दुर्निरीक्ष्य और सब ओर से अप्रमेय देखता हूँ ॥१७॥

मेरा ऐसा मत है, कि आप ही परम अक्षर हैं, आप ही जानने योग्य हैं, आप ही इस जगत् के परमाश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं और आप ही अव्यय तथा सनातन पुरुष हैं ॥१८॥

अनन्त विश्वरूप भगवान् किसी भी रूप में क्यों न हों अपने किरीट को नहीं भूलते। क्योंकि वे सब के मुकुटमणि हैं। केवल वामन रूप रखकर जब गये तब तो उनके माथे पर मुकुट नहीं था, क्योंकि वेष ही भिखारी का बनाया था। मंगन को कंगन की क्या आवश्यकता? जो मांगता है वह मुकुट बांधकर भीख माँगने जा ही कैसे सकता है। नहीं तो ये मुकुट बाँधे बिना रहते नहीं। रामरूप में वनवासी बनकर बन-बन विचरते रहे, तब भी सोने का न सही जटाओं का ही मुकुट बना लिया था। जब ब्रज में गौओं के चराने वाले गोपाल बने थे, तब रत्नजटित मुकुट न सही, मोर की पुच्छ का ही मुकुट बना कर पहिनते थे, तभी तो इनका नाम मोर मुकुटधारी, पड़ गया था। अक्रूरजी को भी जब जमुना के भीतर भगवान् के दर्शन हुए तो वहाँ भी भगवान् किरीट धारी ही थे। यहाँ जब भगवान् ने अर्जुन को अपना विराट्रूप दिखाया, तो उन विश्वरूप भगवान् के मस्तक पर भी दम-दम करके मुकुट दमक रहा था।

सूतजी कहते हैं मुनियो! विश्वरूप भगवान् की स्तुति करते हुए अर्जुन कह रहे हैं—"हे प्रभो! आप दुर्निरीक्ष हैं, आप को कोई चाहे कि इन प्राकृत भौतिक नेत्रों से देख ले सो असंभव है, आप तो दिव्यदृष्टि द्वारा ही देखे जा सकते हैं। आपने कृपा करके मुझे दिव्यदृष्टि प्रदान कर दी है इसीलिये मैं आपके सर्वतः दीप्तिशाली-चारों ओर से प्रकाशपुंज तेजोराशि वाले, परम देदीप्यमान स्वरूप के दर्शन कर रहा हूँ। आप अनेक रूपों में होते हुए भी माथे पर मनोहर मुकुट धारण किये हुए हैं। हाथों में शंख, चक्र तथा गदा और पद्म को धारण किये हुए हैं। असंख्यों अग्नियाँ, असंख्यों सूर्यों की दीप्ति एकत्रित हो जायँ उन सबकी कान्ति के समान आपकी कान्ति-द्युति है। वह द्युति भी वास्तव

में आपकी दिव्य कान्ति की बराबरी नहीं कर सकती आपकी कान्ति अप्रमेय है उसकी कोई प्रमा नहीं, बराबरी नहीं समता नहीं। आप समस्त तेजो की राशि हैं। संसार में जितने भी तेजस्वी हैं, उन सबका तेज आपके ही तेजपुञ्ज से प्रादुर्भूत हुआ है।

आप अ-क्षर हैं, अर्थात् जिसका कभी क्षर-नाश-नहीं हो सकता। आप परम है-महान् है, परमब्रह्म हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं, सम्पूर्ण विश्व में समान रूप से छाये हुए हैं। मोक्ष की इच्छा वालों के लिये इस असार संसार से सदा के लिये पार जाने वालों के लिए एक मात्र आप ही वेदितव्य हैं, जानने योग्य अविनाशी परब्रह्म हैं। आप ही इस चराचर विश्व के-स्थावर जंगम रूप ब्रह्माण्ड के-एकमात्र परम निधान हैं, अर्थात् आश्रय हैं, यह संपूर्ण जगत् आप में ही निहित है, उसके परम प्रकृष्ट निधान-कारण-आप ही हैं।

आप अव्यय हैं, आपका कभी सम्पूर्ण व्यय नहीं होता। संसार के सभी पदार्थों का कभी न कभी व्यय हो जाता है-अंत हो जाता है, सभी पदार्थ चुक जाते हैं, किन्तु आप कभी चुकते नहीं। क्योंकि आप सदा सर्वदा परिपूर्ण हैं। आप में से चाहें जितना निकालें फिर भी आप परिपूर्ण ही बने रहेंगे। आप में चाहें जितना जोड़ दें, किन्तु आप में कोई वृद्धि न होगी क्योंकि आप न्यूनता अधिकता से परे अव्यय हैं।

यह भी बात नहीं कि आप आज हैं कल नहीं हैं। आज परिपूर्ण है, कालान्तर में न्यूनता आ जाय, ऐसा भी नहीं आप शाश्वत हैं और जो धर्म शाश्वत है नित्य है वेद प्रतिपादित है, उस धर्म के आप रक्षक हैं। जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, आप तब-तब भाँति-भाँति के शरीर धारण करके उसकी रक्षा करते हैं।

आप सनातन हैं, ऐसी बात नहीं कि आप बीच में ही कभी उत्पन्न हुए हों और कभी आप का अन्त भी हो जाय, ऐसा भी

नहीं । आप आदि अन्त तथा मध्य से रहित त्रिकाल बाधित सनातन है ।

आप ये जो नाना प्रकार की पुरियाँ हैं अगणित असंख्यों जो देह हैं उनमें आप सोते रहते हैं, अर्थात् संसार का कोई भी ऐसा स्थावर जंगम चर अचर शरीर नहीं है, जिसमें अन्तर्यामी रूप से आप विद्यमान न हों । उस पदार्थ की सत्ता संभव नहीं, जिसमें आप न हो । इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् के रक्षक, पालक, पोषक, उत्पादक, संहर्ता तथा पातन कर्ता हैं । मैं आपके इस रूप के, आप की ही अनुकम्पा से प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ ।

सूतजी कह रहे हैं—मुनियो ! भगवान् विश्वरूप के दर्शनों से जो अर्जुन के हृदय में परम आह्लाद, विस्मय, आश्चर्य और आनंद हो रहा है, उसके कारण वह उनकी स्तुति करते हुए थकता नहीं, वह भगवान् के जिस रूप को, जिस भाव को हो देखता है उसी को लक्ष्य करके स्तुति करते लगता है । अब आगे जैसे अनादि अनन्त वीर्य युक्त उनके रूप की स्तुति करेगा उसे मैं आप से आगे कहूँगा । यह स्तुति प्रसंग भावमय है अतः आप इसे भाव विभोर होकर श्रवण करने की कृपा करें ।

छप्पय

तुम ही अक्षर प्रभो ! ब्रह्म अति परम कहावें ।
तुम ही जानन योग्य सबहिँ कूँ ज्ञान सिखावें ॥
हो परमात्मा परब्रह्म पर पुरुष सनातन ।
आश्रय जग के आपु परम पद दाता पावन ॥
जा अनादि शुभ धरम के, रक्षक अविनाशी सतत ।
सत्य सनातन सकलमय, है मेरो निश्चित मत ॥

अर्जुन द्वारा विश्वरूप भगवान् की स्तुति (३)

[६]

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥*
(श्री भग० गी० ११, अ० १६, २० श्लो०)

छप्पय

देखूँ तुम कूँ आदि मध्य अरु अन्त रहित हौ ।
जग में जितने वीर्य लखूँ तिनि सकल सहित हौ ॥
जित-जित निरखूँ उतहिँ बाहु अति अनँत अपारा ।
रवि शशि दोऊ नयन प्रकाशित जग संहारा ॥
दीप्त हुतासन के सरिस, अगनित मुख अति प्रज्वलित ।
अपने दुर्धर तेज तैं, जगत होत हैं अति तपित ॥

---

* हे प्रभो ! आपको आदि, मध्य और अन्त से रहित अनन्त वीर्य-युक्त, अनन्त बाहुवाला, सूर्य, चन्द्र नेत्र वाला, प्रज्वलित अग्नि के सदृश, अपने तेज से इस विश्व को तपाते हुए देख रहा हूँ ॥१६॥

हे महात्मन् ! स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य का यह आकाश तथा

भगवान् निर्विकार हैं। उनकी उत्पत्ति नहीं, वृद्धि नहीं, क्षय नहीं परिणाम नहीं और विनाश भी नहीं। वे सदा सर्वदा एक रस रहने वाले है। जिसका आदि होगा उसी का अन्त होगा। भगवान् का न आदि है और न अन्त वे अनादि अनन्त हैं। आदि और अन्त के बीच को मध्य कहते हैं, तो जिसका आदि अन्त ही नहीं उसके मध्य की कल्पना तो पागलों का प्रलाप मात्र है।

भगवान् का एक सौम्य, मनहर, सुहावना सुंदर रूप है। दूसरा भयानक, डरावना, संहारक काल रूप है। वास्तव में तो दोनों ही सुखद मंगलमय और कल्याणप्रद रूप है। शिव की कोई लीला अशिव नहीं, कल्याणकारी की कोई क्रीडा अकल्याण *कारक नहीं। उनके सभी रूप मंगलमय हैं, वे जो भी कुछ करते* हैं संसार के कल्याण के ही लिये करते हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टा में जनहित नियत है। वे जो भी करते हैं सब शुभ ही करते हैं। यदि शरीर में खाये हुए अन्न को मल बनाकर वे मलद्वार, द्वारा बाहर न निकालें, तो शरीर यात्रा असंभव हो जाय, यदि अपनी उत्पन्न की हुई प्रजा का वे रुद्र बनकर संहार न करें तो शरीरों की स्थिति कैसे हो सकती है। अतः जैसे उनकी उत्पत्ति क्रिया मंगल-प्रद है, उसी प्रकार संहार क्रिया भी आनन्ददायक माननी चाहिये, किन्तु हममें इतना ही जैव धर्म है, कि हम जन्म को तो सुख प्रद मानते हैं उत्पत्ति के समय तो हर्षित होते हैं। किन्तु सम्मुख काल आ जाता है, तब हम सब भयभीत होकर रुदन करने लगते हैं। त्रस्त होकर दुःख प्रकट करने लगते हैं। वास्तव में देखा जाय, तो उन्हीं महात्मा का वह सौम्य रूप है और उन्हीं

सम्पूर्ण दिशायें तुम्हारे द्वारा ही व्याप्त हैं, तुम्हारे इस अद्भुत और उग्र-रूप को देखकर तीनों लोक परम व्यथित हो रहे हैं ॥२०॥

का विराटरूप तथा कालरूप। हमारा कोई सुहृद सम्बन्धी अथवा पिता है, जब वह वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर आता है, तो हमें अच्छा लगता है, वही जब अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर युद्ध के लिये प्रस्थान करता है, तो शत्रु भले ही उसके रूप से भयभीत हों, हमें तो उससे कोई भय न होना चाहिये, क्योंकि हम उसके सुहृद हैं सम्बन्धी हैं पुत्र हैं। यही अंतर भगवान् के सौम्य रूप तथा विराट्रूप में है। विराट्रूप कालरूप है, संहार रूप है, वह प्राणियों को निगलता हुआ उनका विनाश करता हुआ दिखायी देता है। विनाश भी नवीनी करण है। मृत्यु नव जन्म के हो लिए होती है। अतः भगवान् के विश्वरूप से भयभीत न होना चाहिये, किन्तु त्रिलोकी के जीव भगवान् के उस कालरूप से भयभीत हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! विश्वरूप भगवान् की स्तुति करते हुए अर्जुन कह रहे हैं—"भगवन्! मैंने बहुत प्रयत्न किया, पूरी सामर्थ्य लगाकर खोज की, किन्तु मुझे आपका कहीं आदि ही दिखायी नहीं दिया। इससे मै इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि आप अनादि हैं। फिर मैंने आप का अन्त जानना चाहा। पूरा प्रयत्न करने पर भी आपका कहीं अन्त ही दिखायी नहीं दिया। आदि अन्त के अभाव में मध्य का मिलना तो मृग तृष्णा के सदृश ही ठहरा। इससे मै यही समझता हूँ, कि आप अनंत है। आप की समस्त वस्तुएं; ही अनंत हैं। आपका वीर्य-पराक्रम-पुरुषार्थ तथा प्रभाव भी अनन्त है। आपके मुख्य शरीर में दो, चार या आठ ही वाहु नहीं हैं आप तो अनन्त वाहुओं वाले मुझे दृष्टि गोचर हो रहे हैं। इस आप के विश्वरूप में जो प्रधान मुख है, उसमें नेत्र के स्थान में सूर्य और चन्द्रमा ये दायें-वायें दोनों नेत्र दिखायी दे रहे हैं।

इस मुख्य शरीर में जिसमें सूर्य चन्द्र दो नेत्र हैं, उसके मुख से मूर्तिमान प्रज्वलित अग्नि निकल रही है। उसकी बड़ी-बड़ी लपटें संसार भर में व्याप्त हैं। आप अपने दुर्धर्ष तेज से इस समस्त विश्वब्रह्माण्ड को तपाते हुए से-संतप्त करते हुए से-प्रतीत हो रहे हैं।

यह आप का विराट्‌रूप एक ही स्थान में नहीं-केवल पृथ्वी पर ही हो, सो भी बात नहीं। स्वर्गलोक और पृथ्वी लोक के जो मध्य का भाग है। जिसे भुवर्लोक अथवा अन्तरिक्ष लोक कहते हैं-वह सम्पूर्ण आपके तेज से व्याप्त हो रहा है। जितनी ये दशों दिशायें हैं ये सबकी सब आपके एक मात्र तेज द्वारा ही व्याप्त हैं, आपके द्वारा आच्छादित है। आपके इस अति अद्भुत, अनुपम, अप्रमेय दुर्धर तथा विस्मयापन्न अत्यंत तेजस्वी, परम उग्ररूप को देखकर त्रिलोकी के समस्त जीव प्रव्यथित हो रहे हैं, भयभीत तथा शोक मग्न हो रहे हैं। हे महात्मन्! आप तो सदा सर्वदा साधुओं का परित्राण करते रहते हैं, निष्कृतियों का विनाश करते रहते हैं। आप भयभीतों को अभय प्रदान करने वाले हैं, अतः आपके इस उग्र विशाल विराट्‌रूप के कारण जो त्रिलोकी के जीव भयभीत हो रहे हैं, उनके भय को दूर कीजिये उन्हें अभय प्रदान कीजिये। आप अपने इस डरावने भयावने रूप का उप संहार करलें, इसे समेट कर सबको भय रहित-निर्भय-बना दें।

सूतजी कहते हैं-मुनियो! स्तुति करते-करते अर्जुन स्वयं भी भयभीत हो गये हैं, अतः उस लोक संहारक रूप का वर्णन करते हुए आगे जो स्तुति करेंगे, उसका वर्णन में आपसे करूँगा। आशा है आप उसे दत्तचित्त होकर श्रवण करने की कृपा करेंगे।

छप्पय

यह जो पृथिवी स्वरग आपुतैं परिपूरन है।
इन दोउनि के बीच बितानित सबरो नभ है॥
जे जो दशहू दिशा आपु बिनु नहीं दिखावें।
बिना आपु के नाथ! पदारथ नहीं लखावें॥
रूप उग्र अद्भुत निरखि, शत्रु होहिँ या मीत हैं।
तीन लोक हे महात्मन्! सबई अति भयभीत हैं॥

अर्जुन द्वारा विस्वरूप भगवान् की स्तुति (४)

[१०]

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति,
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः,
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥*

(श्री भग० गी० ११ अ० २१, २२ श्लो०)

छप्पय

जे जो सगरे देव आपु में ही घुसि जावें।
सकल भये भयभीत आपुको ई गुन गावें॥
डरि-डरि कें तव नाम लेहिं गुन गाइ सुनावें।
सब महर्षि अरु सिद्ध स्वस्ति कहि तुमहिं मनावें॥
अपनी अपनी बुद्धि तैं, सबई इस्तुति करत हैं।
अति पुष्कल इस्त्रोत्र रचि, प्रेम सहित प्रभु पढ़त हैं॥

---

* ये सम्पूर्ण देव समूह तुम्हारे में प्रवेश कर रहे हैं, कोई भयभीत

यह सम्पूर्ण जगत् एक सुव्यवस्थित नियम के द्वारा चल रहा है। इस मर्त्यलोक में ही विशेष कर अव्यवस्था हो जाती है, नहीं तो ऊपर के ६ लोकों में तथा नीचे के सात लोकों में बंधी बंधायी व्यवस्था ही चल रही है। दिन के पश्चात् रात्रि होती है। देश भेद से दिन-रात्रि के समय में भले ही अन्तर पड़ जाय, किन्तु दिन के पश्चात् रात्रि, रात्रि के पश्चात् दिन ७ दिन का एक सप्ताह, १५ दिन का पक्ष, दो पक्ष का मास, चार-चार या दो-दो मास की ऋतुएं। ६ या ३ ऋतुओं का वर्ष ३६० वर्ष का एक दिव्य वर्ष, बारह सौ दिव्य वर्षों की एक चौकड़ी, ७१ चौकड़ियों का एक मन्वन्तर, १४ मन्वन्तरों का ब्रह्माजी का एकदिन, ब्रह्माजी के दिनों में ३६० दिनों का ब्राह्म वर्ष और एक ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष इस काल मे असंख्यों पदाधिकारी नियुक्त किये जाते है। ब्रह्मा, प्रत्येक मन्वन्तर में मनु, मनुपुत्र, मन्वन्तर के देवता, इन्द्र, मन्वन्तरावतार, ये बदलते रहते है। देव, उपदेव, जैसे यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किंपुरुष, विद्याधर, नाग, अप्सरा, किन्नर, गुह्यक, रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार मरुद्गण, पितृगण सिद्धगण आदि-आदि। इन सभी को भगवान् समय-समय पर उत्पन्न करते हैं। सब देव उपदेव तथा लोकों में उनके अध्यक्ष बनाते हैं उन अध्यक्षों को भगवान् ही चुनते हैं। वे भगवान् की ही आज्ञा से सब कार्य करते हैं। भगवान् के भय से ही सब अपने-अपने

हुए करबद्ध प्रार्थना कर रहे हैं, महर्षि और सिद्धों के संघ स्वस्ति-स्वस्ति कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं॥२१॥

रुद्र, आदित्य, वसु, साध्यगण, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितर, गन्धर्व, यक्ष, असुर तथा सिद्धों के संघ ये सभी विस्मित होकर आपको देख रहे हैं॥२२॥

कार्यों में लगे रहते हैं। वायु उनके भय से ही बहती है, मेघ उनके भय से ही वर्षा करते हैं। चराचर विश्व उनकी ही आज्ञा से चल रहा है। भगवान् की भृकुटि तनिक भी टेढ़ी हुई कि ये समस्त अधिकारी लोकपाल तथा चराचर जीव थर-थर काँपने लगते हैं। कलियुगी राजा जैसे बलवीर्य, ओज तेज से जब रहित हो जाते हैं, तब प्रजाजन उनका आदर नहीं करते। भगवान् तो समरस है सर्वशक्ति सम्पन्न है, उनका बलवीर्य ओज, तेज ऐश्वर्य, यश, प्रभाव कभी घटता नहीं। अतः समस्त देव, उपदेव अधिकारी उनके मुख की ओर जोहते रहते हैं। अर्जुन को भगवान् ने असमय में विराट्रूप दिखा दिया। वह भी भावी युद्ध का विनाशकारी दृश्य। उस दृश्य को देखकर सबको कुतूहल हुआ, कि न जाने भगवान् क्या करना चाहते हैं। असमय में प्रलय तो नहीं हो जायगी। महर्षि गण स्वस्ति-स्वस्ति—कल्याण हो, मंगल हो, कोई अघटित घटना न घट जाय, इस प्रकार मंगल वचन उच्चारण करने लगे। अर्जुन अपनी स्तुति में उन्हीं सब देव उपदेवों की स्थिति का वर्णन कर रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! आगे अर्जुन स्तुति करते हुए कहने लगे—प्रभो! आपकी आज्ञा से बहुत से देवता, असुर, राक्षस भूभार उतारने को राजाओं के रूप में क्षत्रियों तथा सैनिकों के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए है! अब वे समस्त सुर तथा असुर संघ आपके ही शरीर में मुझे घुसते हुए दिखायी दे रहे हैं। कोई युद्ध करते-करते मर कर आपके शरीर में घुस रहे हैं, कोई-कोई भयभीत होकर भाग रहे हैं कोई दोनों हाथों की अंजलि बाँधे स्तुति विनय कर रहे हैं। सबका कल्याण चाहने वाले ब्रह्मर्षि, महर्षि, राजर्षि तथा सिद्धों के संघ स्वस्ति-स्वस्ति कहकर कल्याण कामना करते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बहुत से ऋषि

महर्षि बड़ी-बड़ी परिपूर्ण अर्थ वाली स्तुतियों द्वारा, आपके प्रबल पराक्रम तथा महान् उत्कर्ष का वर्णन करते हुए सुमधुर वाणियों से आपकी स्तुति कर कर रहे है।

एकादश रुद्र, द्वादशादित्य, अष्टवसु साध्यगण, विश्वेदेवा गण, दोनों अश्विनी कुमार, एक कम पचास मरुद्गण, पितृगण, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, सिद्धगण सबके सब आपको देखते हुए मुझे दिखायी दे रहे हैं। आपके शरीर में सभी प्रवेश करते तथा, निकलते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ये सभी के सभी सोच रहे हैं, आज क्या होने वाला है, आज क्या असमय में अभी प्रलय हो जायगी। सभी परम विस्मित बने चकित-चकित दृष्टि से आपको देख रहे हैं। वे समझ ही नहीं रहे हैं, कि यह कोई लौकिक चमत्कार विशेष है, या भगवान् की भक्त वत्सलता है। तीनों लोकों के जीव परम दुखित व्यथित, पीड़ित होकर आपको निहार रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! अब अर्जुन जी भगवान् के उस विराट्रूप की जिसकी स्तुति कर चुके हैं उन्हीं के अनेकों हाथों पैरों का वर्णन करते हुए जो स्तुति करेंगे, उसका वर्णन मैं आपसे आगे करूँगा। आशा है आप समाहित चित्त से इस पुण्य प्रद प्रसंग को सुनेंगे।

छप्पय

एकादश सब रुद्र और आदित्य बारहौं।
वसुगन जो हैं आठ इनहिँ तव तनमें निरखौं॥
विश्वेदेव सुसाध्य सबहिँ प्रभु कूँ ही पेखें।
कुमर अश्विनी मरुत् पितरगन तुमकूँ देखें॥
यक्ष राकछस मिलि सकल, गायक जो गन्धर्व सब।
अति विस्मित अरु चकित है, नाथ ! निहारें रूप तव॥

अर्जुन द्वारा विश्वरूप भगवान् की स्तुति (५)

[११]

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥
नभः स्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥❀

(श्री भ० गी० ११ अ० २३, २४ श्लो०)

छप्पय

महाबाहु ! विकराल रूप तव अति अद्भुत हैं ।
आनन अधिक असंख्य नेत्र अगनित चमकत हैं ॥
संख्या हाथनि नाहिँ असंख्नि जाँघ लखावें ।
चरन उदर बहुसंख्य बहुत-सी दाढ़ दिखावें ॥
अति विकराल कराल सब, रूप निरखि सब डरि रहे ।
हौं हू व्याकुल अति भयो, नाथ ! होश मम उड़ि रहे ॥

❀ हे महाबाहो ! तुम्हारे जिस शरीर में बहुत से मुख, नेत्र, हाथ-पैर, जघा तथा उदर हैं । बड़ी-बड़ी विकराल दाढ़ें हैं, ऐसे महान् रूप को देखकर सभी लोक व्याकुल हो रहे हैं और मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ ॥२३॥

यह सृष्टि चक्र महान् है। इस सृष्टि चक्र को समझ लेने का अर्थ है, भगवान् को समझ लेना। विराट् भगवान् के शरीर में ये समस्त ब्रह्माण्ड की वस्तुएँ प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं। हम समुद्र को ऊपर से देखते हैं, उसका नीला-नीला जल हमें बड़ा ही भला दिखायी देता है, इच्छा होती है, इसे बैठे-बैठे देखते ही रहें। किन्तु ऊपर-ऊपर से जो हम समुद्र को देखते हैं, वही समुद्र का रूप नहीं है। किसी यन्त्र विशेष से यदि हम समुद्र का सम्पूर्ण रूप देखने में समर्थ हो जायँ तो हम उसके उस भयंकर रूप को देख कर भयभीत हो जायँगे। समुद्र के भीतर बड़े-बड़े पर्वत हैं, नाना भाँति के पौधे हैं, घास है, योजनों लम्बे जलजन्तु हैं। सैकड़ों हाथियों को निगल जायँ ऐसे जीव हैं, सर्प हैं, असंख्यों प्रकार की मछलियाँ विविध भाँति के विषैले जीव हैं। नाना भाँति के रत्न हैं। समुद्र का यथार्थ रूप वही है। इसी प्रकार भगवान् जब, रामकृष्ण वामन आदि मनोहर रूप रखकर हमारे सामने आते हैं तो हमें कितने मधुर लगते हैं। इच्छा होती है इन्हें आँखों में बिठा लें, हृदय में विराजमान करलें। महाराज बलि बटुवामन के छोटे से, नन्हे से, सुन्दर से रूप को देखकर विमुग्ध हो गये। उनकी स्त्री रत्नावली तो बच्चे के सौन्दर्य पर निछावर हो गयी। लड़की तो इतनी आसक्त हुई कि उन्हें अपना पुत्र बनाकर स्तन पिलाने की इच्छा करने लगी। इसीलिये उसे पूतना बनना पड़ा और श्रीकृष्ण ने उसका स्तनपान करके उसे माता के सदृश गति

हे विष्णो! गगनस्पर्शी, देदीप्यमान अनेक वर्णों वाला जो आपका रूप है, जिसमें फटा हुआ मुख, देदीप्यमान् विशाल नेत्र हैं, ऐसे आपको देखकर मैं भयभीत हो गया हूँ, मेरा धैर्य छूट गया है, मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है॥२४॥

दी। राजा बलि बटु वामन के ऊपरी रूप को ही देखकर मुग्ध हो गये थे। जब उन्होंने उनका त्रिविक्रमरूप देखा और दो डगों में ही विश्व ब्रह्मांड को नाप लिया तब तो वह चकित हो गया।

यह जो देव सर्ग, मानुष सर्ग, पशु पक्षी अंडज पिंडज सर्ग, उद्‌भिज आदि सर्ग है ये सब चौरासी लाख योनियों के अन्तर्गत है। दक्ष प्रजापति की जा ६० कन्याये है त्रैलोक्य के समस्त जीव इन्हो से हुए है। इन साठ कन्याओं के वश से ही यह सम्पूर्ण जगत् भर गया है।

देवताओं के ही बहुत से भेद है। साधारणतया देव सर्ग आठ प्रकार का होता है। १–एक देवगण स्वर्ग में जितने भी नित्य रहने वाले देवता है वे सब देवता कहलाते है इनके अतिरिक्त पितर भी उपदेव होने से देवसर्ग में ही आते हैं। कव्यवाह, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त और बर्हिषद ये पितरों के सात गण हैं। ये उष्ण अन्न का भोजन करते हैं, इसलिये इन्हें उष्णपा भी कहते हैं। इसी प्रकार तीसरे असुरों की भी देवसर्ग में गणना है ये असंख्य हैं और दिति के पुत्र हैं। चौथे गन्धर्व अप्सरा यह एक ही सर्ग है, पांचवें यक्ष राक्षस ये भी बहुत हैं। छटे सिद्ध, चारण, विद्याधर सातवें भूत, प्रेत पिशाच, और आठवें किन्नर, किंपुरुष, अश्व मुख आदि हैं। इन्हीं के अन्तर्गत आदित्य, वसु, साध्य विश्वे देवा, अश्विनी कुमार, उनचास मरुत आदि सबकी गणना है।

जब भगवान् अवतार लेकर मनोहर रूप रखकर अवनि पर अवतरित होते हैं, तब हमें इनके शरीर में ये सब दिखायी नहीं देते। जब इनके विराट्रूप को कोई-कोई भाग्यशाली देख पाता है, तो उसे ये सब देव उपदेव, मनुष्य, पशु-पक्षी, सरीसृप,

वृक्षलता गुल्म प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। यह रूप नित्य देखने का नहीं है। यह तो कुतूहल वश देखने का है।

जब कोई विलक्षण वस्तु, अश्रुत पदार्थ, नये पदार्थ की बात सुनते हैं, तो हमारे मन में उसे देखने का कौतूहल होता है। एक बार देख लेने पर उत्सुकता समाप्त हो जाती है। भयंकर विलक्षण वस्तु अधिक काल तक नहीं देखी जाती। उत्सुकता समाप्त हो जाने पर फिर उसे देखकर भय हो जाता है। जैसे दाल, भात, रोटो, साग तो हम जीवन भर खाते रहें तो नहीं ऊबते। हलुआ, रबड़ी आदि गरिष्ठ पदार्थ एक दो दिन खाकर ही ऊब जाते हैं। फिर इच्छा होती है, वह सादा भोजन मिले। उत्सुकता अधिक काल नहीं रहती। विलक्षण वस्तु को देख कर उत्सुकता समाप्त हो जाती है।

अर्जुन ने जब तक भगवान् का विराट्रूप नही देखा था, तब तक उसे देखने को वह अत्यन्त ही उत्सुक था। जब उसने विराट् रूप को देखा और उस रूप के सामने ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, उन्चास मरुत्, दोनों अश्विनी कुमार, बारह साध्य देवता, दस विश्वेदेवा आदि परम प्रबल कहलाने वाले थर-थर काँप रहे है तो अर्जुन उस रूप को देखकर भयभीत हो गया। उसको उत्सुकता समाप्त हो गयी। कौतूहल मिट गया। उसका स्थान भय ने ले लिया। कहाँ तो श्रीकृष्ण का कितना सौम्यरूप, और कहा यह भयंकर विराट्रूप। सब देव उपदेवों को थर-थर काँपते देखकर अर्जुन भी भय के कारण काँपने लगा। काँपते-काँपते ही वह आगे स्तुति करने लगा।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! आगे स्तुति करते हुए अर्जुन कह रहे हैं—"प्रभो! आपके इस अत्यद्भुत, विचित्र, अलौकिक अभूत पूर्व विराट्रूप को देखकर ये तीनों लोकों के जीव

भयभीत हो रहे हैं. देव गण चकित-चकित दृष्टि से आपके इस रूप को निहार रहे हैं। समस्त प्रजा के जन व्यथित हो रहे हैं।

हे महाबाहो हे स्वामिन्! आप के इस विराट् स्वरूप में इतने मुख हैं, कि इनकी गणना किसी भी प्रकार से की ही नहीं जा सकती। इस रूप में उदर इतने हैं, कि किधर आदि है किधर अन्त है इसका पता नहीं चलता। चारों ओर उदर ही उदर दृष्टि गोचर हो रहे हैं। उन भयंकर मुखों में चन्द्र सूर्य के सदृश असंख्यों नयन दिखाई दे रहे हैं। पैरों की कोई संख्या नहीं, बाहुओं की गणना नहीं, जंघाओं की कोई सीमा नहीं। चरणों की गिनती नहीं, मुखों में बड़ी-बड़ी विकराल भयंकर दाढ़ें दिखायी दे रही है। इन सब असंख्य अङ्गों वाले आपके विराट् रूप से चराचर समस्त प्राणी प्रव्यथित हो रहे हैं। घबरा रहे हैं। व्यथा का अनुभव कर रहे हैं। उनकी बात जाने दो, सदा सर्वदा आपके समीप ही रहने वाला हूँ ऐसा मैं भी परम व्यथित हो रहा हूँ. मुझसे भी आपका यह असह्य रूप देखा नहीं जा रहा है। यह तो अच्छे-अच्छे धैर्यवानों के भी धैर्य को छुड़ाने वाला रूप है। इसकी भयानकता का कहाँ तक वर्णन करूँ?

ऊँचाई में देखता हूँ, तो आपके अनन्त सिर गगन चुम्बी हैं. आकाश को स्पर्श कर रहे हैं। मुखों को देखता हूँ. तो उनकी लम्बाई चौड़ाई की कोई सीमा नहीं। उनके तेज का कोई वारा-पार नहीं। वे अनेक रंगों के हैं, कोई लाल है. कोई सफेद है, हैं कोई नीले, पीले, हरे, बैंजनी, गुलाबी तथा सुर्मई आदि अनेकों रङ्ग के हैं। उनके विशाल नेत्र दम-दम दमक कर अन्धकार का विनाश कर रहे हैं। आपके वे असंख्यों मुख फटे हुए हैं, जिससे उनकी भयंकरता और बढ़ गयी है।

इन अगणित रूप, अगणित फटे हुए मुखों को देखकर समस्त लोकों के जीव घबड़ा रहे हैं, थर-थर काँप रहे हैं। मेरा अन्तःकरण भी इस अद्भुत रूप को देखकर परम व्यथित हो रहा है। मैं बहुत चाहता हूँ, धैर्य पूर्वक आपके दर्शन करता रहूँ किन्तु धैर्य धारण करने में मैं असमर्थ हूँ, मेरा चित्त परम अशान्त हो रहा है। हे विष्णो: मैं अपना कल्याण नहीं देख रहा हूँ, मुझे शान्ति का अनुभव नहीं हो रहा है ?

भगवान् के उन मुखों में से एक मुख ने कहा—क्यों बात क्या है ? क्यों इतने भयभीत हो रहे हों ?

सूतजी कहते है—मुनियो ! अर्जुन यह सुन कर भयभीत होता हुआ पुनः विनती अथवा प्रलाप करता हुआ जैसे कहने लगा उसका वर्णन मैं आगे करूंगा।

छप्पय

नभ तक फैल्यो यह विशाल तव मुख बनवारी।
है अति ई दैदीप्यमान आनन अति भारी।।
अति विशाल प्रभु नेत्र दिशनि में दम-दम दमकें।
चकाचौंध करि देइँ चाव तैं चम-चम चमकें।।
अन्तरातमा अति व्यथित, थर-थर काँपहुँ हौं सतत।
मन धीरज नहिँ धरि सकौं, शान्ति न पाऊँ हौं चकित।।

अर्जुन द्वारा विश्वरूप भगवान् की स्तुति (६)

[१२]

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसंन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥
अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥*
(श्री भ० गी० ११ अ० २५, २६ श्लो०)

छप्पय

अति बिकराल कराल दाढ़ तीखी खूँटा सम।
प्रलयानल सम ज्वलित अमितमुख हियफाटत मम ॥
कौन दिशा का ओर ? ज्ञान यह नाथ ! भुलायो।
होवै दुख-सुख नहीं, निरखि चक्कर-सो आयो ॥
सब देवनि के अधिपती, जगनिवास जगपति दयति।
प्रभु प्रसन्न ह्वै जायँ अब, मोइ लखैं करुना सहित ॥

---

* हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायँ। इस समय मैं तुम्हारे विकराल दाढ़ोंवाले, कालानल के सदृश मुख को देखकर दिशाओं को नहीं जानता और सुखी भी नहीं हो रहा हूँ ॥२५॥
धृतराष्ट्र के ये सभी पुत्र राजाओं के समुदाय सहित भीष्म, द्रोण

कोई व्यक्ति जब अपने निवास स्थान के घर को छोड़कर दूसरे घर में जाना चाहता है, तो सबको तो नहीं, जो उसके निकटस्थ पुरुष होते हैं, उन्हें आभास मिल जाता है, कि यह इस घर को छोडना चाहता है जिस घर में जाना चाहता है, उसमें पहिले से ही वह अधिक आने जाने लगता है। शनैः शनैः वहाँ आवश्यक सामान भी पहुँचाने लग जाता है, कभी-कभी रात्रि में भी वहीं रह जाता है। इन्हीं सब कारणों से समीपस्थ पुरुषों को पूर्वाभास हो जाता है। उसका शरीर अभी तक भले ही पूर्व भवन में रहता है, किन्तु मन से तो वह नये भवन में एक प्रकार से रहने ही लगा है।

इसी प्रकार दैवी प्रकोप होने को होते है तो इनका आभास पशु पक्षियों को पहिले से ही मिल जाता है। वर्षा होने को होती है, तो वर्षा होने के पूर्व ही चींटियाँ अपने-अपने अंडों को लेकर दूसरे स्थान पर जाने लगती है। आँधी आने को होती है, तो उसके पूर्व ही पक्षी अपने घोंसलों में छिप जाते हैं। भूचाल होने को होतो है तो पशु पक्षी पहिले से ही सचेत हो जाते हैं। मरने वाले व्यक्ति के महीनों पहिले कई असगुन ऐसे होते है, जिनसे जाना जा सकता है, कि इसकी मृत्यु सन्निकट है, जैसे ध्रुवतारा का दिखायी न देना, नाक का टेढ़ा हो जाना, छाया में छिद्र दिखायी देना दुस्स्वप्नों का दिखायी देना आदि-आदि।

बात यह है कि भगवान् क्या करना चाहते हैं, इसका संकल्प उनके मन में पूर्व ही आ जाता है, वे अमोघ संकल्प हैं उनका संकल्प कभी मोघ-अर्थात् विफल-व्यर्थ नहीं होता। इसीलिये तो

और इस कर्ण सहित तथा हमारे पक्ष के भी मुख्य-मुख्य योद्धा, आपके शरीर में प्रवेश कर रहे हैं ॥२६॥

भगवान् ने अर्जुन से कहा था—"ये जो भीष्म, द्रोण जयद्रथ, कर्ण तथा और भी जितने अन्यान्य वीर हैं, इन सबको तो मैं अपने संकल्प से पहिले ही मार चुका हूँ। अर्थात् इनके मारने का संकल्प तो मै पहिले ही कर चुका हूँ। मेरा संकल्प कभी व्यर्थ तो होता नहीं। मै जो सोच लेता हूँ, वह होकर ही रहता है, अतः तुम इन भीष्म द्रोणादिक वीरों को मृतक ही समझो। तुम तो इन मरे हुओं को मार कर श्रेय प्राप्त करलो। केवल निमित्त मात्र बन जाओ। एक बात और भी स्मरण रखना तुम चाहें एँ करो चाहे चें करो, जिन्हें मारने का मै तुम्हें निमित्त बना चुका हूँ, वे तुम्हें मारने ही पड़ेंगे। यदि अहंकार के वशीभूत होकर तुम हठ करोगे, कि मैं लड़ूंगा नहीं, अपने सगे सम्बन्धियों को मारूंगा नहीं, तो तुम्हारा यह व्यवसाय मिथ्या है। प्रकृति तुम्हें विवश कर देगी। बरबस तुम्हें इनको मारना ही पड़ेगा।" इस प्रकार भगवान् किस किसको मारना चाहते हैं। विश्वरूप में अर्जुन को उन्होंने इस बात को प्रत्यक्ष करके दर्शा दिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् ने अर्जुन से कहा था—जिस बात को तुम देखना चाहते हो, कि किसकी विजय होगी, किसकी पराजय होगी, कौन मरेगा कौन जीवेगा। इन समस्त बातों को तुम प्रत्यक्ष मेरे इस विराट्रूप में तुम स्पष्ट देख सकोगे। भविष्य का चित्र मैं तुम्हें अपने विश्वरूप में दिखाता हूँ, और भी जो तुम भूत, भविष्य अथवा वर्तमान की बातें देखना चाहोगे सब मेरे इस रूप में देखोगे।" उसी को सत्य करते हुए भगवान् अर्जुन को अपने विराट्रूप में यह सब दिखा रहे हैं। उसे देखते हुए परम-भय से भयभीत हुए अर्जुन भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं।

अर्जुन ने कहा—"भगवन्! आपके विकराल भयंकर खुले

हुए मुख बड़ो-बड़ो दाढ़ों के कारण अत्यन्त ही भयङ्कर दिखायी दे रहे हैं। मुख क्या है मानों कालाग्नि की लपटें निकलने के बड़े बड़े भयङ्कर कर विवर हैं। जिनमें से दहकती हुई, दिशाओं को जलाती हुई लपटें निकल-निकलकर विश्व का संहार कर देना चाहती हों। इस रूप को देखकर मैं तो हक्का-बक्का हो गया हूँ। मैं कहाँ खड़ा हूँ, पूर्व किधर है, उत्तर, दक्षिण, पश्चिम किधर है, इसका मुझे ज्ञान ही नहीं हो रहा है। मेरी बुद्धि चकरा गयी है, मैं हतप्रभ हो गया हूँ। मेरा चित्त बारम्बार अशान्त हो रहा है। बहुत बिचारने पर भी मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है। प्रभो! आप क्रोध करने वाले—इस संहारक रूप को छिपा लें। मुझ पर प्रसन्न हो जायँ। हे देवेश! आप तो समस्त देवों के एक मात्र स्वामी हैं, सबके शासनकर्ता, अधीश्वर हो। हे जगन्निवास! समस्त जगत् के चराचर जीव आप में ही निवास कर रहे हैं। सबके आधार आप ही हो। मुझ भयभीत को अभय प्रदान कीजिये। मुझ अशान्त को शान्ति प्रदान करते हुए मुझ पर परम प्रसन्न हो जायँ।

मैं आपके इस विराट्रूप में विलक्षण-विलक्षण बातें देख रहा हूँ। भविष्य का सभी दृश्य चलचित्रों की भाँति मुझे स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है। होने वाली सभी बातें मुझे दीख पड़ रही हैं। युयुत्सु को छोड़कर धृतराष्ट्र के समस्त पुत्र अपने पक्ष के राजाओं सहित मुझे आपकी भयङ्कर दाढ़ों के नीचे पिसते हुए दिखायी दे रहे है। यह बात नहीं कि निर्बल बीर ही पिस रहे हों। जो भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, सूत्र पुत्र कर्ण अजेय माने जाते हैं, जिन्हें जीतने का साहस देवता भी नहीं कर सकते ये सबके सब शीघ्रता के साथ आपकी दाढ़ों के नीचे दबते हुए चूर्ण होते हुए आप में प्रवेश कर रहे हैं।

सब शत्रु पक्ष के ही वीर पिस रहे हों सो भी बात नहीं, हमारे पक्ष के भी धृष्टद्युम्नादि वीर भी आपकी दाढ़ों के नीचे पिसते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। मैं जिसे देखता हूँ, वही विवश होकर अपने आप, आपके मुख में घुसा जा रहा है, आपकी दाढे यन्त्र के समान निरन्तर चल रही हैं, जैसे कोई चक्की रही हो। उसमें दोनों ओर के वीरवर निरन्तर पिसते ही जा रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! भयभीत हुआ अर्जुन भगवान् के विकराल मुख में वीरगण कैसे पिस रहे हैं, इसका वर्णन करते हुए अर्जुन जो और स्तुति करेगा, उसे मैं आपसे आगे कहूँगा।

छप्पय

देखि रह्यो हे प्रभो! पुत्र धृतराष्ट्र सकल शत।
आये रनके हेतु नृपति ये सबई अगनित॥
पूज्य पितामह भीष्म द्रोण गुरुवर आचारज।
दानवीर ये कर्ण करे जिनि दुष्कर कारज॥
राजा पक्ष विपक्ष के, शूरवीर योद्धा अमित।
प्रविशत तव तन में प्रभो, सारथि अरु वाहन सहित॥

अर्जुन द्वारा विश्वरूप भगवान् की स्तुति (७)

[१३]

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥
यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेग ॥

(श्री भग० गी० ११ अ० २७, २८ २९ श्लो०)

छप्पय

तुम्हरो भीषन विपद भयंकर मुख अति भययुत ।
दौरे सबई जायँ स्वयं नहिँ अन्य बुलावत ॥
पैनी तीखन दाढ़ जाइँ जिनिमें जे प्रानी ।
तिनि कूँ चूरन करत न लाओ मन में ग्लानी ॥
सबहिँ चबावत स्वाद तैं, भूखो ज्यों चरबन चबै ।
कोई पूरो पिस गयो, कोई दाँतनि तर दबै ॥

---

* बिकराल दाढ़ों वाले आपके भयानक मुख में ये सब वेगयुक्त हुए प्रवेश कर रहे हैं। बहुत से चूर्ण हो गये हैं शिर जिनके, ऐसे आपके

महाराज प्रियव्रत को समझाते हुए ब्रह्माजी ने कहा—"प्रियव्रत ये सभी प्राणी प्रभु की प्रेरणा से ही समस्त चेष्टायें कर रहे हैं। तुम समझते होगे कि सृष्टि करने में मैं स्वतन्त्र हूँ, ऐसी बात नहीं हैं मैं तो एक मात्र उन सर्वान्तर्यामी प्रभु की आज्ञा से उन्हीं की प्रेरणा से सृष्टि रच रहा हूँ। महादेव जी उन्हीं की आज्ञा से संहार कार्य करते हैं, मनु उन्हीं की प्रेरणा से प्रजा पालन में प्रवृत्त होते हैं। नारद जी भी उन्हीं की इच्छा से गृहस्थ धर्म को न स्वीकार करके इधर-उधर घूमने रहते हैं। कोई चाहे कि हम तपस्या करके विभु के विधान को बिगाड़ दे तो उसका व्यवसाय व्यर्थ है। कोई चाहे कि विद्याबल, योग बल, बुद्धि बल, अथ बल अथवा धर्म की शक्ति से उनके संकल्प को अन्यथा कर दे तो असम्भव है। जितने जीव हैं सब अवश होकर, उन प्रभु की प्रेरणा से जैसे नथा हुआ बैल स्वामी की प्रेरणा से बोझ ढोना आदि कर्मों को करता है ऐसे ही प्राणी सब अपने-अपने गुण कर्मों के अनुसार प्रवृत्त हो रहे है।"

देखने में तो ये बातें अटपटी सी ही लगती हैं, यह मानव प्राणी अपने को स्वतन्त्र कर्ता माने बैठा है। किन्तु वास्तव में देखा जाय, तो इसकी स्वतन्त्रता क्या है। सोचता है कुछ हो

दातों में लगे हुए दिखायी देते हैं ।।२७।।

जैसे नदियों के जल प्रवाह समुद्र के ही सम्मुख दौड़ते हैं, उसी भाँति ये मनुष्य लोक के वीरगण आप के प्रज्वलित हुए मुखों में प्रवेश करते हैं ।।२८।।

जैसे पतङ्ग प्रदीप्त अग्नि में नष्ट होने के लिये अत्यन्त वेग से प्रवेश करते हैं, उसी भाँति ये सब लोग भी नष्ट होने के निमित्त तुम्हारे मुखों में अत्यन्त वेग से प्रवेश कर रहे हैं ।।२९।।

जाता है कुछ। करना चाहता है कुछ हो जाता कुछ। हाथी जान बूझ कर गड्ढे में नहीं गिरता वह काठ की हाथिनी को सच्ची हथिनी समझ कर उससे संगम सुख प्राप्त करने दौड़ता है, किन्तु वहाँ जाकर वह गड्ढे में गिरकर पकड़ा जाता है। मछली जो वंसी की डोरी मे लगी गोली को स्वाद के लिये निगल जाती है, किन्तु वह उसके गले में हिटक जाती है. उस की मृत्यु का कारण बन जाती है। पक्षी जाल को तो देखते नहीं उसमें बिखरे हुए अन्न के दानों को देखते हैं, भूख मिटाने के लोभ से उन्हें चुगने को उद्यत हो जाते हैं, पैर फँस जाने से वधिक बहेलिया के वशवर्ती बन जाते हैं। हिरन व्याधिनि की वीणा की सुमधुर ध्वनि को सुनकर विमुग्ध बन जाते हैं। अपने आपे को भूलकर तन्मय हो जाते हैं। उसी अवस्था में व्याध उन्हें मार देता है। पतंगा दीपक की लुभावनी लोय को देखकर उसे आलिंगन करने दौड़ता है, जल भुनकर भस्म हो जाता है। ये सब तो बुद्धि हीन माने जाते हैं यह जो मनुष्य नाम का जन्तु है जो अपने को समस्त बुद्धि का स्वामी समझता है सब जीवों से अधिक अपने को बुद्धिमान लगाता है, यह भी तो विवश होकर विषयों में प्रवृत्त होता है। देखता हुआ भी नहीं देखता। सब जानते हैं, विषय भोगों से आज तक कोई तृप्त नहीं हुआ। फिर भी उन्हीं के लिये दौड़ता रहता है। काल रूप प्रभु जीवों को पासे बनाकर क्रीडा कर रहे हैं। पासे स्वयं कुछ कर नहीं सकते। फेंकने वाला जिधर चाहे उधर फेंक दे।

एक दिन लक्ष्मीजी ने पूछा—"प्रभो! आप प्राणियों का संहार कैसे करते हैं?"

भगवान् ने कहा—"मैं काल रूप से प्राणियों का संहार करता हूँ।"

लक्ष्मीजी ने पूछा—"तो मनुष्य प्राणी तो स्वतन्त्र है, वह अपने पुरुपार्थ से बच क्यों नहीं जाता ?"

भगवान् ने कहा—"मैं ऐसे रूप से जाता हूँ कि लोग मुझे देखते हुए भी पहचान नहीं सकते।"

लक्ष्मीजी ने कहा—"मुझे दिखाइये कैसे आप जाते हैं।"

भगवान् ने कहा—"मैं अपनी एक छाया छोड़े जाता हूँ, जिधर यह मेरी छाया जाय, उसी ओर तुम चलती रहना और दृश्य देखती रहना।" यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

लक्ष्मी जी एक नदी के किनारे खड़ी हो गयी। देखा एक मनुष्यों से भरी नौका जा रही है, नदी की तीक्ष्ण धारा के बीच में जब नौका पड़कर डगमगाने लगी। तभी उसमें एक सर्प चढ़ आया। सर्प को देखते ही सब भयभीत होकर एक ओर हो गये। नौका डूब गयी। सब मर गये।

लक्ष्मी जी आगे बढ़ीं। दो सिपाही सगे भाई-भाई जा रहे थे, दोनों क्वारे थे। एक स्त्री मिली। बड़े भाई ने कहा—मैं इससे विवाह करूँगा। छोटे ने कहा— मैं इससे विवाह करूँगा। दोनों आपस में लड़ने लगे। दोनों पर अस्त्र थे, दोनों कट कर मर गये।

लक्ष्मी जी आगे बढ़ी एक पर्वत की कँगार पर पेड़ था, उस पर सुंदर फूल खिल रहा था। एक बच्चा उस फूल को देखकर मुग्ध हो गया, वह लोभ संवरण नहीं कर सका। फूल तोड़ने गया, नीचे गिर गया और मर गया।

लक्ष्मी जी आगे बढ़ी। कुछ स्त्रियाँ नहा रही थीं। उन्हें एक बड़ी सी मछली दिखयी दी, वह उसे पकड़ने दौड़ी तो डूबने लगी, दूसरी ने उसे बचाने को हाथ बढ़ाया उसका हाथ

दूसरी ने दूसरी का हाथ तीसरी ने पकड़ा। सब तीक्ष्ण प्रवाह में बह गयीं। मर गयीं।

कुछ देर पश्चात् भगवान् प्रकट हुए और बोले—तुम कुछ समझीं ?

लक्ष्मी जी ने कहा—"मैं तो कुछ नहीं समझीं।"

भगवान् ने कहा—"नौका में सर्प रूप से मैं ही चढ़ा था, दो भाइयों के बीच में स्त्री रूप में मैं ही था, उस बच्चे को मारने को फूल का रूप मैंने ही बना लिया था। स्त्रियों को जो मछली दिखायी दी थी, वह मैंने ही बना लिया था। इसी प्रकार कहीं रोग बनकर, कहीं विष बनकर, कहीं अग्नि, जल, सर्प, बिजली तथा अनिष्ट बनकर मैं ही जीवों को मारता रहता हूँ। सर्वहरा मृत्यु मेरा ही रूप है। "मृत्यवेदुःखदाय च" दुःख देने वाला मृत्यु है। मृत्यु से प्राणी कितना भी बचे। जब जहाँ पर जिसके द्वारा मृत्यु होने वाली होती है अवश्य हो जाती है। कोई कितना बचने का प्रयत्न करे, वह बच सकता ही नहीं। समस्त प्राणी विवश होकर मेरे विधान के अनुसार कार्य कर रहे हैं इसलिये सदा सर्वदा मेरा स्मरण करते हुए जिसका जो कर्तव्य कर्म हो उसे कुशलता पूर्वक करते ही रहना चाहिये। करते भी रहना क्या चाहिये मैं उससे वैसे करा ही लेता हूँ।"

सिद्धान्त की बात यही है, हम दैव की प्रेरणावश कार्य कर रहे हैं, हमें यह कर्म चक्र दिखायी नहीं देता, हम आँख मूँदकर करते जाते हैं करते जाते हैं। अर्जुन की भाँति भगवान् का कोई कृपा पात्र होता है, तो भगवान् उसे इस कर्म तन्त्र को इस विराट वैभव को प्रत्यक्ष दिखा भी देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब अर्जुन ने भगवान् की बड़ी बड़ी दाढ़ों वाले, जीभ लपलपाते हुए, प्राणियों को चबाते हुए

असंख्यों मुख देखे, तो वे भय के कारण घबराते हुए स्तुति करते हुए कहने लगे—"भगवन् ! आपके ये मुख क्या हैं, शीशा गरम करने की असख्यो भट्टियों के समान हैं। कैसी भी आकृति की वस्तुयें आ जायँ उन सब को ये स्वाहा करती जाती हैं। जितने भी प्राणी हैं, सभी बड़े वेग से आते हैं और बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले आपके मुख में बड़े वेग के साथ घुस जाते हैं। उनमें से कुछ का चूर्ण हो जाता है, कुछ दाढ़ों के चक्कियों के बीच में पड़कर पूरे पिस जाते हैं, कुछ अधपिसे रह जाते हैं। कुछ की खोपड़ियाँ चूर्ण हो जाती हैं। कुछ दाँतो में अटक जाती हैं। यह बात भी नहीं कि यह संहारक क्रिया कुछ काल होकर बन्द हो जाय, यह व्यापार तो अनवरत हो रहा है। बिना व्यवधान के चल रहा है। इसकी सीमा नहीं, परिधि नहीं इयत्ता नहीं, इति श्री नही।

जैसे समुद्र गा नदियाँ चारों ओर से बिना बुलाये ही समुद्र की ओर बड़े वेग से, बिना विश्राम लिये दौड़ी चली जा रही हो, उसी प्रकार ये मर्त्य लोक के समस्त वीर बिना बुलाये ही आपके मुखों की ओर दोड़े चले आ रहे हैं और इन परम प्रज्वलित विकराल मुखों में अपने आप ही बिना विचारे, किसी अव्यक्त प्रेरणा के वशीभूत होकर घुसते हुए चले जा रहे हैं।

यह बात भी नही, कि ये सब अन्धे हों; इन सब वीरों के बडी-बड़ी आँखें हैं, यह भी बात नहीं कि आपके अग्नि की बडी-बड़ी लपटों वाले प्रज्वलित मुख इन्हें दिखायी न देते हों। ये इनमें उठती हुई लपटों को उसी प्रकार देख रहे हैं जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि की लोय को पतगे देखते हैं, किन्तु देखते हुए भी वे पतंगे बिना भविष्य का विचार किये हुए बड़े वेग से अग्नि की ज्वाला में घुमकर अपने शरीर को नष्ट कर देते हैं, उसी

प्रकार ये वीर भी तीव्र वेग से आपके मुखों में प्रवेश कर रहे हैं और नष्ट हो रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! इस प्रकार अर्जुन ने समस्त पृथ्वी के वीरों को तथा अन्यान्य जीवों को निगलते हुए विराट् भगवान् की स्तुति की, अब उनका असह्य तेज कैसा है, उसका जसा वर्णन करेंगे, उसे मैं आपसे आगे कहूँगा।

छप्पय

ज्यों नदियनि को वेग वेगतैं दौरयौ जावै।
भगत समुन्दर ओर न उनकूँ उदधि बुलावै॥
लेइँ नहीं विश्राम सतत अति चलत वेग तें।
जल में करैं प्रवेश होहिँ स्वाहा सनेह तैं॥
वैसे ही नर लोक के, बीर तुम्हारे मुख प्रबिसि।
पिसे जात सब बीरवर, भये बिबस आवत अबसि॥

ज्यों प्रदीप्त प्रज्वलित अगिनि में प्रविसि पतङ्गा।
होइ मोहवश छार करत मूरख सब अङ्गा॥
त्यों ही ये सब बीर आपुके मुख में आवैं।
बिना बुलाये वेग सहित इतई आ जावैं॥
सबई अपने नाशहित, आवैं दौरे वेगयुत।
आवत ही पिसि जायँ सब, चलत रहत कारज सतत॥

हे प्रभो ! आप हैं कौन ?

[१४]

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्य
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥*
(श्री भग० गी० ११ अ०, ३०, ३१ श्लो०)

छप्पय

लपलपात तव जीभ मुदित है ओठनि चाटत ।
सब लोकनि ग्रासि लेइ आपुको मुख जब फाटत ॥
होहि न कबहूँ शान्त जरै मुख नाथ तिहारो ।
मानों मुख तैं अबहिँ सकल लोकनि संहारो ॥
हे विष्णो ! अति उग्र तव, मुख फाटत ममहित फटत ।
मनहुँ चराचर जगत कूँ, तेज ताप तैं तुम तपत ॥

---

* हे विष्णो ! आप सब ओर से अपने प्रज्वलित मुखों से समस्त

भगवान् अपने दर्शन देकर अपने निजी आश्रित भक्तों को सद्गुणों की शिक्षा देते हैं। भगवान् भविष्य की बात प्रकट करके भक्तो को यह पूछने को विवश कर देते हैं, कि आप भविष्य वक्ता है कौन ? तब भगवान् हँसकर-अपने यथार्थ रूप में भक्त के सम्मुख प्रकट हो जाते हैं, भगवान् के दर्शन पाकर भक्त कृतकृत्य हो जाता है, भगवान् भक्त की मनोकामना पूर्ण करते हैं, इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा है।

नरोत्तम नाम का परम विद्वान् तपस्वी ब्राह्मण था। तपस्या करते-करते उसे बहुत-सी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। उसके वस्त्र आकाश में निराधार सूखने लगे। इससे उसे अपनी तपस्या का बड़ा अभिमान हो गया। उसके अभिमान को दूर करने के लिये भगवान् ने किसी प्रकार उसे परम सदाचारी तुलाधार वैश्य के यहाँ शिक्षा लेने भेजा। तुलाधार वैश्य साधारण वेष में रहता था, कभी झूठ नहीं बोलता था, ठीक तोलता था। उसके यहाँ भगवान् सदा निवास करते थे। तुलाधार के घर भगवान् को देखकर नरोत्तम ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भगवान् से पूछा—भगवन् ! आपके दर्शन तो योगियों को भी परम दुर्लभ हैं। आप इस साधारण तुलाधार के घर में क्यों रहते हैं ?

लोकों को खाते हुए, ओठों को चाट रहे हैं। आपका यह अत्यन्त उग्र प्रकाश समस्त जगत् को तेज पुंज के द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है ॥३०॥

मुझे बतावें तो सही कि उग्ररूप वाले आप हैं कौन ? हे देववर ! आपको बार-बार प्रणाम है। आप प्रसन्न हो जायें, आपको मैं यथार्थ रूप से जानना चाहता हूँ। आप करना क्या चाहते हैं, इसे मैं जानता नहीं ॥३१॥

भगवान् ने कहा—"यह तुलाधार साधारण नहीं है। वैश्य जाति में उत्पन्न हुआ तो इससे क्या हुआ इसमें सत्य, समता, अपरिग्रह तथा वैराग्य आदि ऐसे महान् गुण है, जिन पर रीझ कर मै इसके यहाँ सदा रहता हूँ। जो यथा प्राप्त वस्तुओं में ही सन्तुष्ट रहता है, जो दूसरे की वस्तु को अन्याय पूर्वक लेना नहीं चाहता, जो परिग्रह से दूर रहता है, सदा सत्य वचन बोलता है, ऐसा पुरुष चाहे जिस जाति का हो, मै उस पर प्रसन्न होता हूँ और उसे अपना लोक प्रदान करता हूँ। उसे संसार से सदा के लिये विमुक्त बना देता हूँ। इस विषय का मै तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाता हूँ—

भगवान् विष्णु नरोत्तम ब्राह्मण से कह रहे है—विप्रवर! एक बड़ा ही सद्गुण सम्पन्न शूद्र जाति का भक्त था। वह कभी कल के लिये संग्रह नहीं करता। वन में अपने आप उत्पन्न होने वाले सागपात को लाकर खेतों से कटने के पश्चात् पड़े हुए शिलि को अन्न के दानों को-बीनकर उसी से निर्वाह करता। उसके पास दो फटे पुराने वस्त्र थे, उन्हीं से वह अपना निर्वाह करता, दूसरों की समृद्धि अथवा सम्पत्ति को देखकर जलता नही था। किसी भी संसारी वस्तु में वह लोभ नहीं करता। वह जो मिल जाता उसी में परम सन्तुष्ट रहता।

भगवान् कह रहे है—"सो द्विजवर! एकबार मैंने उसके अलोभ की परीक्षा लेनी चाही। क्योकि लोभ ही समस्त पापों का बाप है। मै सुंदर दो वस्त्र नदी किनारे जहाँ वह नहा रहा था, रखकर छिप गया। उस शूद्र ने वस्त्रों को देखा चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, कहीं कोई मनुष्य नही। उसने सोचा—अब तक तो ये वस्त्र नहीं थे, अभी-अभी कहाँ से आ गये। प्रतीत होता

है, कोई भूल गया है। यह सोचकर वह उन वस्त्रों को वहीं छोड़कर अपने घर चला गया।

मैंने सोचा—"साधारण वस्त्रों पर इसका मन न गया होगा। अब के इसे भारी प्रलोभन दूँ।" यह सोचकर मैंने गूलर के फलों में बहुत-सा सुवर्ण भर-भर कर डाल दिया। जब वह फल बीनने गया और उन फलों को भारी देखा, तो उसे संदेह हुआ। अवश्य ही कुछ दाल में काला है। यदि लोभवश मैं इन फलों के भीतर भरे सुवर्ण को ग्रहण कर लेता हूँ, तो इनके पीछे प्रलोभ की वृत्ति—"अपरिग्रह की प्रतिज्ञा नष्ट हो जायगी।" यह सोचकर वह सुवर्ण भरे गूलरा को बिना हाथ लगाये वहीं छोड़कर चला गया। उसने फिरकर भी उन गूलरों की ओर नहीं देखा। उसने सोचा इन तुच्छ सुवर्ण के लोभ से मैं अपने लिये नरक का द्वार प्रशस्त क्यों करूँ?"

भगवान् कह रहे हैं—विप्रवर! जब मैंने देखा, यह महान् संयमी, अपरिग्रही त्यागी विरागी शूद्र सुवर्ण के लोभ मे नही फँसा तो मैंने भविष्य वक्ता क्षपणक का वेष बना लिया और मैं लोगों की भूत भविष्य वर्तमान की बातें बताने लगा। कुछ ही काल में मेरी सर्वत्र ख्याति हो गयी। झुन्ड के झुन्ड नरनारी अपना भविष्य पूछने मेरे समीप आने लगे।

उस शूद्र की स्त्री भी मेरे पास अपना भाग्य दिखाने आयी। मैंने उसका हाथ देखकर कहा—"तेरे पास कुछ नहीं है। तुझे सब वस्तुओं का अभाव रहता है, यह सब तेरे पति की मूर्खता के ही कारण होता है, आज तेरे पति को बहुत-सा धन मिला था। किन्तु उसने मूर्खतावश उस धन का परित्याग कर दिया। तू अभी अपने घर जा और अपने पति से उस धन को ग्रहण करने का आग्रह कर।"

इस बात को सुनकर शूद्रपत्नी अपने घर गयी और भविष्य वक्ता क्षपणक की सब बातें कह सुनायीं और धन लाने का आग्रह करने लगीं।"

शूद्र ने कहा—"तू उस क्षपणक के पास मुझे ले चल।"

तब वह अपने पति को साथ लेकर उस क्षपणक के पास गयी। मेरे पास आकर उस शूद्र ने पूछा—क्यों ज्योतिषी जी आप मेरी पत्नी को क्यों बहका रहे हो?

क्षपणक रूपधारी मैं बोला—क्या तुमको आज धन प्राप्त नही हुआ था?

शूद्र ने कहा—"हाँ हुआ था?"

क्षपणक—तो फिर तुमने उसे ग्रहण क्यों नहीं किया? घूनरों में भरे उस सुवर्ण को छोड़कर तुम चले क्यों आये?

शूद्र ने कहा—"मुझे धन की इच्छा ही नहीं।"

क्षपणक—क्यों इच्छा नहीं, धनके अभाव में तुम मारे-मारे फिर रहे हो। तुम्हारी यह स्त्री इतना दुख पा रही है। अब भी वह धन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, उसे ग्रहण करके तुम निष्कंटक भोग भोगो। दान पुण्य शुभ कर्म करो। अपने बन्धु-बन्धुवों में प्रतिष्ठा प्राप्त करो।

शूद्र ने कहा—"आप मुझे बहकाइये नहीं। धन तो पाप का मूल है। पन्द्रह दोष तो धन आते ही आ जाते हैं।"

क्षपणक ने कहा—सब गुण धन में ही रहते हैं, जिसके पास धन है, उसी के मित्र हैं उसी से भाई बन्धु कुटुम्ब परिवार के लोग प्रेम करते हैं, निर्धन व्यक्ति की कोई बात भी नहीं पूछता। शरीर रोगी हो जाय, धन न हो तो महान् कष्ट होता है।

शूद्र ने कहा—ये सब अभाव, कष्ट धन के कष्ट के सहस्रांश भी नहीं। धन के लोभ का जो महान् कष्ट है उसे धनिक ही

जानते हैं मैं परधन को मिट्टी, पराई स्त्री को माता के समान समझता हूँ। धन के त्याग में जितना सुख और सन्तोष है, वह उसके ग्रहण करने में नहीं है।

भगवान् कह रहे हैं—"विप्रवर ! शूद्र के इतना कहते ही आकाश से दिव्य पुष्पों की वर्षा होने लगी, दिव्य दुंदुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व गान करने लगे। तुरन्त आकाश से एक दिव्य विमान उतरा और उसमें बैठे देवता कहने लगे—"धर्मात्मन् ! तुमने अपने अपरिग्रह के प्रभाव से सनातन सत्यलोक को जीत लिया है। आप अनन्त काल तक वहाँ सत्यलोक के सुखों को भोगो।"

शूद्र ने देवताओं से कहा—"यह क्षपणक कौन है ? इसमें ऐसी भाषण शक्ति कैसे आ गयी। इसे ऐसा ज्ञान कैसे प्राप्त हो गया ? इसकी चेष्टाओं से मुझे संदेह हो रहा है। ये विष्णु तो नहीं ? धर्म तो नहीं ? क्षपणक जी ! आपही सच-सच बताओ आप हो कौन ?"

तब हँसकर मैने कहा—"मैं विष्णु ही हूँ, मैं तुम्हें बोध कराने यहाँ आया था। अब तुम सपरिवार विमान पर बैठकर सनातन सत्य में जाओ।"

जिस प्रकार शूद्र को भगवान् ने परीक्षा लेने के अनन्तर विलक्षण दर्शन दिये, उसी प्रकार भगवान् ने अर्जुन को भी अपने विराट्रूप के दर्शन कराये। जिस प्रकार शूद्र ने क्षपणक बने भगवान् से पूछा-कि आप हो कौन ? इसी प्रकार अर्जुन ने भी जिज्ञासा की कि उग्ररूप वाले आप हो कौन ?

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! जब अर्जुन ने युद्ध के लिये उद्यत राजाओं को भगवान् के मुख में पिसते हुए-चूर्ण होते हुए-देखा और यह भी देखा कि भगवान् का महान् दिव्य तेज असह्य है। वे ऐसे लग रहे हैं मानों समस्त संसार का संहार कर देंगे, सबको

अपनी दाढ़ों तले दबा कर चूर्ण कर देंगे, निगल जायँगे तो उनके तेज की प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए अर्जुन कह रहे हैं—"आप इन सम्पूर्ण प्राणियों को चबा-चबा कर निगल रहे हैं। फिर लप लपाती जिह्वाओं से अपने ओठों को चाट रहे हैं। पता नहीं आपको क्या स्वाद आ रहा है। ये जितने भी पक्ष विपक्ष के वीर हैं, सभी आप का ग्रास बन रहे हैं। अपने परम प्रज्वलित भयंकर मुखों द्वारा सभी को लीले चले जा रहे हैं।

आपने इस समग्र जगत् को अपने व्यापनशील तेज से आच्छादित कर लिया है, संसार को व्याप्त कर लिया है। इस कारण से आप की तीव्र प्रभा सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में सन्ताप उत्पन्न कर रही है। अग्नि के समान आप की असह्यदीप्ति सबको जला रही है। मै यह निर्णय ही नहीं कर पा रहा हूँ, कि आप हैं कौन? हे देवाधिदेव! हे देववर! आप मुझे अपना पूरा परिचय प्रदान कीजिये। आप ऐसे उग्ररूप वाले हो कौन? मै आप का दास हूँ, सेवक हूँ, कृपापात्र हूँ, यदि आप मुझे बताने का अधिकारी मानते हो, तो कृपा करके अपने सम्बन्ध में कुछ संकेत करें। हे स्वामिन्! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। अंजलि को परमामुद्रा कहा है देववर अंजलि से शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। मै अंजलि बाँधे हुए विनीत भाव से आप को प्रणाम करता हूँ। आप मुझ दीन हीन पर प्रसन्न हो जायँ।

आप कहोगे, कि तुम तो मुझे पहिले से ही जानते हो, तुम्हारी इच्छा पर ही तो मैंने तुम्हें अपना विराट्रूप दिखाया है। बात तो सत्य ही है। आप भगवान् हैं, पुरुषोत्तम हैं, इतना तो मैं पहिले से ही जानता हूँ, किन्तु अब मे आपको विशेष रूप से जानना चाहता हूँ। आपके विराट्रूप से ही इतना तो पता चल ही गया, कि आप जगत के एक मात्र आदि कारण हैं-आद्य

हैं-आपने इस समय में ऐसा भयंकर उग्ररूप किस हेतु से धारण कर रखा है मै आपकी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं कर सका हूं। आप कृपा करके अपने स्वरूप का परिचय करा दें और किस प्रवृत्ति के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं, आप करना क्या चाहते हैं, इसे भी बता दें।"

सूतजी कहते हैं, मुनियो ! अर्जुन की ऐसी घबराहट को देखकर विश्वरूप धारण किये हुए श्री श्यामसुंदरजी हंस पड़े। अब अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए, भगवान् ने जैसे अपना परिचय दिया, जैसे अपने सम्बन्ध में तथा अपनी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में बताया, उसका वर्णन मै आगे करूंगा। आशा है आप शान्त भाव से दत्तचित्त होकर इस प्रभु-प्रदत्त परिचय के सम्बन्ध में सुनने की कृपा करेंगे।

छप्पय

कौन देव हैं आपु दया नहिं नेंक दिखावें।
जो आवत तव ओर तुरत ताई कूँ खावें॥
हे देवनि के देव! दया जीवनि पै कीजै।
प्रभु प्रसन्न ह्वै जायँ हमें शुभआशिष दीजै॥
जानन चाहत आपु कूँ, तव चरननि बन्दन करैं।
तव प्रवृत्ति समुझत न हम, परिचय दै संशय हरैं॥

श्री विश्वरूप भगवान द्वारा आत्मपरिचय

[१५]

श्री भगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुंक्ष्वराज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥*

(श्री भा० गी० ११ अ० ३२, ३३ श्लो०)

छप्पय

तब विराट भगवान् कहैं-अरजुन ! यह मानों।
मैं कालनि को काल मोइ कालहिँ करि जानों ॥
इन लोकनि को नाश करन हौं इत ही आयो।
भच्छन सब कूँ करन भयंकर रूप बनायो ॥
तू हू यदि मारै नहीं, तौ जे सब मरि जायँगे।
काल गाल में घुसे सब, कैसे ये बचि जायँगे ॥

---

* भगवान् ने कहा—मैं काल हूँ, लोकों का क्षय करने वाला हूँ। इन सब लोकों का क्षय करने के निमित्त प्रवृत्त हुआ हूँ। प्रति पक्षियों में अवस्थित जो योधागण हैं, वे सब—तुम युद्ध भी न करो, तो तुम्हारे बिना भी बच नहीं सकते ॥३२॥

हे सव्यसाची ! इसलिये तू उठकर खड़ा हो जा। तू तो केवल

ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर इतना ही है, कि ज्ञानी तो समझता है, जितने भी कार्य हैं सब पूर्व नियोजित प्रकृति के द्वारा हो रहे हैं। जो अहंकार विमूढ़ात्मा अज्ञानी है, वह यही सोचता है, करने वाला मैं ही हूँ। जो अपने को कर्ता समझेगा उसको उस कर्म के अच्छे बुरे फल का भोक्ता भी बनना पड़ेगा। जो होने वाला होता है, उसके अनुरूप ही परिस्थितियाँ बन जाती हैं। दैवेच्छा को अन्यथा करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं। महाराज परीक्षित् की पत्नी इरावती को उसके बाल्यकाल में ही एक त्रिकालज्ञ ऋषि ने बता दिया था, कि तुम्हारा पति एक दिन दक्षिण दिशा को जायगा, वहाँ भूख प्यास से पीड़ित होकर एक ऋषि आश्रम पर पहुँचेगा, वहाँ पानी माँगेगा। ऋषि समाधि अवस्था में होने के कारण सुनेंगे नहीं, तब राजा को वहाँ मरा हुआ सर्प दिखायी देगा, वह उसे ऋषि के कंठ में डालकर चला आवेगा, वही उसकी मृत्यु का कारण बनेगा।

अतः रानी कभी भी आखेट के लिये महाराज परीक्षित् को दक्षिण दिशा को नहीं जाने देती थी, किन्तु भावी को कौन टाल सकता है, नियत समय पर न चाहते हुए भी यह सब हुआ और महाराज परीक्षित् की उसी कारण से मृत्यु हुई।

मृत्यु स्वयं मृत्यु के पद पर आना नहीं चाहते थे, ब्रह्माजी से तीन बार उन्होंने यह पद स्वीकार करने को मना कर दिया। किन्तु विधि के विधान को मेंट कौन सकता है, ब्रह्माजी ने उन्हें बनाया ही इसीलिये था, अतः उन्हें अनिच्छा पूर्वक ही यह पद

निमित्त मात्र हो जा, ये सब तो पहिले ही मेरे द्वारा मारे गये हैं। इन मृतक शत्रुओं को जीतकर यश कमा ले और इस समृद्धशाली राज्य का उपभोग कर ॥३३॥

स्वीकार करना पडा और उस पद पर प्रतिष्ठित होकर वे अब तक कार्य कर रहे है।

करते कराते तो सब भगवान् ही है, जीवों को तो वे निमित्त बना लेते हैं। नही तो आठों वसुओं के अंश से उत्पन्न, देवताओं के लिये भी अजेय, परशुराम जी को भी जीतने वाले, स्वेच्छा मृत्यु वाले भीष्मपितामह को शिखंडी मार दें। विधि का ऐसा ही विधान था।

जो भगवान् को करना होता है, उसकी रूपरेखा तो पहिले से ही बनी रहती है, जो अज्ञानी है इस रहस्य को नहीं समझते वे ही घटनाओं को देखकर अकस्मात् या सहसा हुई मानते हैं। अकस्मात् कोई घटना होती ही नहीं। सब पूर्वनियोजित हैं। दिव्यदृष्टि वाले ही उन्हें देख सकते हैं।

बरबरीक का सिर काटकर जब भगवान् ने उसके सिर को एक शमी वृक्ष पर टांग दिया, और उसकी इच्छा के अनुसार युद्ध देखने की उसे दिव्यदृष्टि दे दी, तो वह कटे सिर से ही समस्त युद्ध को देखता रहा।

युद्ध के अंत मे जब पांडवों को लेकर भगवान् उसके पास पहुँचे और उससे पूछा—"किसने कितना पुरुषार्थ किया ? किसने अधिक से अधिक सैनिकों का संहार किया ?" तब उसने कहा—"न तो मैने भीम को मारते देखा, न अर्जुन के ही बाण से कोई मरा, न भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्य किसी को मार सके। मैं तो समस्त रणभूमि में एक काल पुरुष को खड्ग लिये हुए घूमते देखता रहा। वही दोनों ओर के सैनिकों का संहार कर रहा था। उसी के द्वारा भीष्म, द्रोण, कर्ण शल्य, धृतराष्ट्र के सौ पुत्र तथा समस्त सैनिक मारे गये। और वह काल पुरुष ये ही श्रीकृष्ण चन्द्र जी थे।"

बरबरीक की बात सत्य ही थी। श्रीकृष्ण ने ही काल रूप से सबको मरवाया। श्रीकृष्ण न चाहते तो महाभारत युद्ध होता ही नहीं। उनकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। ऊपर से दिखाने को उन्होंने यही प्रकट किया मैं युद्ध के सर्वथा विरुद्ध हूँ। लोक दिखावे को उन्होंने सन्धि कराने के पूरे प्रयत्न किये दुर्योधन को भाँति-भाँति से समझाया। किन्तु दुर्योधन के हृदय में बैठकर भी तो वे ही उसे युद्ध के लिये प्रेरित कर रहे थे। इसीलिये दुर्योधन ने कहा भी था—"हे हृषीकेश! मैं धर्म को जानता हूँ, किन्तु उसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। मैं अधर्म को भी जानता हूँ, किन्तु उसमें निवृत्त नहीं हो सकता। हे सर्वान्तर्यामी सर्वप्रेरक प्रभो! आप ने मुझे जिस काम में नियुक्त कर रखा है, मैं अवश होकर उसी काम को कर रहा हूँ।"

महाभारत के लिये भगवान् ने काल रूप रख लिया था और उसी रूप से सबका संहार भी करा दिया। इसीलिये अर्जुन के पूछने पर भगवान् आत्मपरिचय देते हुए अपने को काल रूप में बता रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो जब भगवान् के विश्वरूप को देखकर अर्जुन भयभीत हो गया और उसकी आँखों के सम्मुख चकचौंध छा गया, तब उसने गद्‌गद कंठ से अस्खलित वाणी द्वारा पूछा—भगवन्! आप कौन हो?"

भगवान् ने कहा—"मैं काल हूँ काल?"

अर्जुन ने पूछा—"आप करना क्या चाहते हैं? आपकी प्रवृत्ति के विषय में मैं जानना चाहता हूँ।"

भगवान् ने कहा—"मैं यहाँ पर रणभूमि में लोकों का संहार करने में प्रवृत्त हुआ हूँ।"

अर्जुन ने कहा—"क्यों संहार करना चाहते है प्रभो?"

भगवान् ने कहा—"मुझे भूख लगी है। भूख में सभी आहार करना चाहते हैं। ये सब सैनिक भी मेरे आहार हैं-भक्षण करने के पदार्थ है। इन्हें खाकर मैं अपनी भूख बुझाने के लिये यहाँ आया हूँ। मेरी समस्त चेष्टायें इन सबको खा जाने की है। भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य और तुम्हारी तथा कौरवों की सेना में जितने भी वीर सैनिक है उन सबको मैं मार डालूँगा।"

अर्जुन ने कहा—"भगवन्! जब आप स्वयं ही इन्हें मारना चाहते है, तो फिर मुझसे युद्ध करने का आग्रह क्यों कर रहे हैं। आप इन्हें मार डालिये।"

भगवान् ने कहा—"मै तुम्हारे ही द्वारा इन्हे मरवाना चाहता हूँ।"

अर्जुन ने कहा—"यह भी कोई बात हुई, मान न मान मैं तेरा महमान। मै मारना न चाहूँ तो?"

भगवान् ने कहा—"तुम भले ही न मारना चाहो, फिर भी ये बचने वाले नहीं हैं। प्रत्येक दशा में इन्हें मरना ही है। जितने ये प्रतिपक्षियों के सेनिक हैं और तुम्हारे पक्ष में भी जिनका काल आ गया है, जो यहाँ मरने के लिये स्वयं ही आ आकर उपस्थित हो गये हैं। वे तुम्हारे युद्ध न करने पर भी जीवित नहीं रह सकते।"

अर्जुन ने कहा—"नहीं महाराज, बडा जघन्य कार्य है, मैं तो इस युद्ध से विरत होकर बैठे रहना ही चाहता हूँ।"

भगवान् ने कहा—"यह वचन क्षत्रियोचित नही है। क्षत्रिय तो संग्राम का महामहोत्सव मानता है। युद्ध की भेरी बजते ही उसके अंग प्रत्यंग फड़कने लगते हैं। तुम्हें यह अवसर अनायास ही प्राप्त हो गया है, अतः न तो तुम लेटो ही न बैठो ही उठकर खड़े हो जाओ।"

अर्जुन ने कहा—"खड़ा होकर मैं करूँगा ही क्या ? भगवन् !"

भगवान् ने कहा—"खड़े होकर शूरवीर क्षत्रिय की भाँति धर्म युद्ध करो।"

अर्जुन ने पूछा—"धर्म युद्ध से होगा क्या ?"

भगवान् ने कहा—"युद्ध से विजय प्राप्त होगी। विजय से तीनों लोकों में यश की प्राप्ति होगी।"

अर्जुन ने कहा—"कोरे यश को लेकर क्या करेंगे ? उसे ओढ़ेगें या बिछावेंगे।"

भगवान् ने कहा—"महत् पुरुषों का मान ही धन है। कीर्ति ही उनके लिये प्रशंसनीय गुण है। फिर तुम्हें तो यश के साथ समृद्धशाली राज्य की प्राप्ति हो जायगी।"

अर्जुन ने पूछा—"तो क्या देवता असुरों द्वारा भी कभी न जीते जाने वाले भीष्म, द्रोण, कर्ण और जयद्रथादि वीरों को मैं मार भी सकूँगा क्या ?"

भगवान् ने कहा—"कैसी पागलों की-सी बातें कर रहे हो। अरे, मार क्या सकोगे, ये तो पहिले से ही मर गये हैं। मौत के मुख में गये हुए ये निर्जीवास्था में ही अस्त्र-शस्त्र लिये खड़े है।"

अर्जुन ने पूछा—"इन सबको मार किसने डाला ?"

भगवान् ने कहा—"और इन्हे मार ही कौन सकता है। किसमें इतनी सामर्थ्य है मैंने ही इन्हें मार डाला है।"

अर्जुन ने कहा—"भगवन् ! जब आप इन्हें मार ही चुके है, तो मरे को क्या मारना ? पिसे को क्या पीसना। मृत्यु तो इन्हें आपने प्रदान कर ही दी है।"

भगवान् ने कहा—"इनको तो मैंने मृत्यु प्रदान कर ही दी, किन्तु तुम्हें भी एक वस्तु प्रदान करना चाहता हूँ।"

अर्जुन ने पूछा—"मुझे क्या वस्तु प्रदान करेंगे प्रभो !"

भगवान् ने कहा—"तुम्हें मै विजय प्रदान करना चाहता हूँ। वैसे धन भाग्य से ही मिलता है, किन्तु व्यापार को उसका निमित्त बना देते हैं। मृत्यु काल आने पर ही होती है, किन्तु विष, अग्नि, सर्प, तथा रोगादि को मृत्यु का कारण बना देते हैं। इसलिये तुम्हें मैं इनकी मृत्यु का निमित्त मात्र बना देना चाहता हूँ, जिससे तुम्हें विजयश्री प्राप्त हो ?"

अर्जुन ने कहा—"और भी तो बहुत से वीर है, उनमें से किसी को भी आप विजयश्री प्रदान कर सकते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"तुममें विशेषता है, तुम मेरे सुहृद हो सखा हो भक्त हो अनुरक्त हो। फिर तुममें एक ऐसी भारी विशेषता है, जो किसी अन्य वीर में दुर्लभ है। तुम दोनों हाथों से दायें बायें से समान रूप से बाण चला सकते हो। ऐसा दूसरा कोई कर ही नहीं सकता बायें हाथ से भी तुम बाणों का संधान करने में समर्थ हो। अतः तुम निमित्त मात्र बनकर विजयश्री का वरण करो।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! इतने पर भी भगवान् नाम ले-ले कर कह रहे हैं, मैं इन्हें मार चुका हूँ। इन सब के मारने के लिये भगवान् जैसे अर्जुन को पुनः प्रेरित करेंगे उस पुण्य प्रसंग को मैं आप से आगे कहूँगा।

छप्पय

तातैं अब उठि बीर ! सुयश जग में ध्रुव लै तू।
इन शत्रुनि कूँ मारि सबहिँ सुहृदनि सुख दै तू॥
विजय मिलैगी सब समृद्धियुत राज्यहिँ पावै।
इन मृतकनिकूँ मारि पार्थ ! काहे घबरावै॥
शूरवीर सैनिक सकल, मैंने मारे प्रथम महि।
निमित मात्र अरजुन बनो, मन में लाओ ग्लानि नहि॥

कालस्वरूप विराट् भगवान् का परिचय पाकर अर्जुन की प्रणति

[१६]

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥*

(श्रीभ० गी० ११ अ० ३४, ३५ श्लोक)

छप्पय

द्रोन करन अरु भीष्म इनहिँ तू जीवित समुझत ।
अरे मृतक सब बने मृतक इनि च्यौं नहिँ मारत ॥
जितने भारी वीर जयद्रथ करन सुयोधन ।
मेरे द्वारा मरे प्रथम ही सुनि लै अरजुन ॥
निश्चय तेरी विजय है, निरभय ह्वै तू बीरवर ।
भय मति करि गहि शस्त्र कर, पारथ ! तू अब युद्ध कर ॥

---

* देख, द्रोण, भीष्म, जयद्रथ कर्ण तथा और भी जो ये वीरवर हैं, ये सबके सब मेरे द्वारा मारे गये हैं, इन मृतकों को मार डाल, डरे मत। युद्ध कर, तू अवश्य ही इन वैरियों को जीतेगा ॥३४॥

महाभारत के समय जब संजय ने धृष्टद्युम्न के द्वारा द्रोणाचार्य की मृत्यु की बात सुनाई तो उनके लिये शोक करते हुए महाराज धृतराष्ट्र कहने लगे—संजय ! जो द्रोणाचार्य शत्रुओं के लिये सदा दुर्जय थे, जो समस्त अस्त्र शस्त्रों में पारंगत थे, जो मर्यादा में रहने वाले थे, जो जितेन्द्रिय तथा दिव्य अस्त्रों के धारण करने वाले थे, ऐसे वीराग्रगण्य क्षात्र और ब्राह्मी श्री से युक्त आचार्य द्रोण द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा कैसे मारे गये ? इससे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पुरुषार्थ की अपेक्षा दैव ही प्रबल है।

द्रोणाचार्य समस्त अस्त्र शस्त्रों के महान् पंडित थे, वे वीरवेष से मंडित थे, उनके घोड़े बलवान् थे, रथ सुदृढ़ थे। जो राजकुमारों द्वारा परम पूजित थे। वे सभी शस्त्रधारी योधाओं के गुरु थे, जो शत्रु संतापी, खल निग्रही, धर्म रक्षक, शुक्र और वृहस्पति के सदृश नीतिज्ञ, सर्वत्र विजयी, कौरवों के रक्षक और शुभ चिंतक थे। वे अपने ही एक साधारण शिष्य राज कुमार के हाथों मारे गये, इससे तो यही सिद्ध होता है दैव ही बलवान् है पुरुषार्थ तो अनर्थ का हेतु है। संजय ! मुझे यह बात बताओ कि जो द्रोण सिंह के समान पराक्रमी, महान् उदार, लज्जाशील, किसी से भी जीते न जाने वाले थे। उन दुर्धर्ष वीर को समर भूमि में सम्पूर्ण राजाओं के देखते-देखते धृष्टद्युम्न ने कैसे मार डाला। हाय ! उनकी मृत्यु सुनकर मेरी छाती भी नहीं फटती, मैं मर भी नहीं जाता।

महाराज धृतराष्ट्र से संजय कह रहे हैं—"भगवान् केशव के इन वचनों को सुनकर, हाथ जोड़े हुए, थर-थर काँपता हुआ नमस्कार करके, भयभीत अर्जुन बारम्बार प्रणाम करके, भगवान् श्रीकृष्ण से गद्गद वाणी में बोला। ३५॥

ऐसा ही विलाप महाराज धृतराष्ट्र ने भीष्मपितामह तथा कर्ण की मृत्यु के समय किया था। पितामह की मृत्यु का सम्वाद सुनकर उन्होंने कहा था—"जो भीष्म अजेय थे, समस्त पृथ्वी को २१ बार क्षत्रिय शून्य बना देने वाले परम यशस्वी परशुरामजी को भी जिन्होंने युद्ध में जीत लिया था, जिन्हें देवता असुर सब मिलकर भी जीत नहीं सकते थे, जो वसुओं के अवतार थे, बाल ब्रह्मचारी और इच्छा मृत्यु वाले थे, उनको शिखण्डी के द्वारा परास्त होना पड़ा। इसमें एक मात्र दैव ही कारण है कर्ण के मरने पर भी उन्होंने इसी प्रकार के उद्‌गार प्रकट किये।

वास्तव में देखा जाय, तो उस समय संसार में द्रोण, भीष्म, कर्ण तथा जयद्रथादि महान् शूरवीरों को जीतने वाला कोई नहीं था। जिस समय भीष्म पितामह ने अपने पक्ष के वीरों का दुर्योधन को परिचय कराया था, उस समय ऐसा लगता था, कि इन दुर्जय वीरों को जीतने वाला पांडवों की सेना में एक भी वीर नहीं है, सभी दिव्यास्त्रों के ज्ञाता थे, सभी अक्षोणि सेनाओं के स्वामी थे, सभी ने तपस्या के द्वारा बड़े-बड़े वर प्राप्त किये थे। जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र ने यह वर प्राप्त किया था, कि समर भूमि में जो मेरे पुत्र का मस्तक पृथ्वी पर गिरायेगा, उसका शिर भी तत्काल भूमि पर गिर जायगा। स्वयं जयद्रथ ने भी शिवजी की आराधना करके दिव्यास्त्रों की प्राप्ति की थी। कर्ण की वीरता का क्या कहना, वे तो त्रैलोक्य को प्रकाशित करने वाले भगवान् सूर्यनारायण के कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न और सुपुत्र थे, जो ज्ञान में, दान में, सम्मान में, सुशीलता, सज्जनता, कृतज्ञता आदि गुणों में अपने ही समान थे। जिनकी बराबरी करने वाला उस संसार में दूसरा नहीं था। वे भी मारे गये।

कृपाचार्य अजर-अमर हैं, उन्हें कोई मार ही नहीं सकता

था। अश्वत्थामा तीनों लोक की प्रलय करने में समर्थ थे, जो अजर-अमर हैं, इसी प्रकार भूरिश्रवा, स्वयं दुर्योधन उसके सौ भाई भी महान् योद्धा थे। शल्य के समान शूरवीर योद्धा पांडव सेना में कौन था? जब इन सबको भी हम युद्ध में मरते हुए, परास्त होते हुए देखते हैं, तो इसी परिणाम पर पहुँचते हैं, कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को मार नहीं सकता। कालदेव ही भाँति-भाँति के रूप बनाकर क्रीड़ा कर रहे हैं। जिसका काल आ जाता है, वह पहिले से ही मृतक प्रायः बन जाता है। मृत्यु को तो वरदान प्राप्त है अतः वह मारने का कलंक अपने ऊपर नहीं आने देता, किसी को निमित्त बनाकर मरवाता है। काल रूप भगवान् जिसे मारना होता है, उसे पहिले से ही मृतकवत् बना देते हैं। जैसे किसी पत्थर की शिला को फोड़ना है, तो बहुत से आदमी उसमें घनों द्वारा चोट लगाते हैं, किन्तु वह शिला फूटती नहीं। क्यों नहीं फूटती इसलिये कि उसका श्रेय दैव किसी दूसरे को ही देना चाहते हैं। तो क्या इन लोगों ने जो इतनी चोटें लगायी वे सब व्यर्थ ही हो गयीं? नहीं, व्यर्थ नहीं हुई उन चोटों से वह शिला निर्बल बन गयी, फूटने के योग्य बन गयी। अब जिसे उसका श्रेय देना होता है, भगवान् जिसे यश देना चाहते हैं, वे आकर एक चोट मारता है, शिला फट से फूट जाती है। सब लोग धन्य-धन्य कहने लगते हैं। उसकी प्रशंसा करने लगते हैं वास्तव में तो वह शिला पहिले से चोट लगते-लगते फूट-सी गयी थी, किन्तु पहिले चोट करने वालों के भाग्य में श्रेय नहीं था। भगवान् को जिसे श्रेय देना था उसी के हाथों फुड़वाकर उसे निमित्त बना दिया। इसी बात को भगवान् अर्जुन को बार-बार समझा रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आत्म परिचय देते हुए विराट्

वेषधारी भगवान् अर्जुन से कह रहे हैं—खड़े होकर युद्ध करो शत्रुओं को जीतकर यश प्राप्त करो।" अर्जुन ने जब शंका की कि भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथादि इतने भारी-भारी महारथियों को मैं कैसे जीतूंगा। इन्हें मैं कैसे मार सकूंगा। तो भगवान् कहते हैं—तुम्हें मारना नहीं पड़ेगा। इन्हें मै पहिले ही मार चुका हूँ, तुम तो इन मृतकों में केवल धक्का देकर यश प्राप्त कर लो। अर्जुन ने जब कुछ बड़े-बड़े योद्धाओं के नाम गिनाकर उन्हें अजेय और अजरामर बताया तब भगवान् कहने लगे—"तू किन-किन से विशेष डरता हैं ?"

अर्जुन ने कहा—"सबसे अधिक तो मैं अपने सर्व समर्थ आचार्य द्रोण से डरता हूँ। कोई भी अमोघ अस्त्र ऐसा नही है, जिसे ये जानते न हों। हम सब के ये गुरु हैं। भगवान् परशुराम ने अपनी समस्त अस्त्र विद्या इन्हें सिखा दी है। इन्हें भला कोई रण में जीत सकता है ? इन्हें कोई मार सकता है ?"

भगवान् ने कहा—"अच्छा और ?"

अर्जुन ने कहा—"भीष्म पितामह को ही ले लो। ये भगवती भागीरथी गङ्गा जी के पुत्र है, बाल ब्रह्मचारी हैं। अपने गुरु परशुराम जी को भी परास्त करने वाले है। अपनी इच्छा के बिना ये कभी मर ही नही सकते। इन्हें मारने की सामर्थ्य किसमें है ?"

भगवान् ने कहा—"अच्छा और ?"

अर्जुन ने कहा—"इन वृद्धक्षत्र के पुत्र जयद्रथ को ही देखो। जो इनके सिर को काटने का साहस करेगा, उसका सिर अपने आप ही कट कर गिर जायगा। इनके सिर को कौन काट सकताहै ?"

भगवान् ने कहा—"अच्छा और ?"

अर्जुन ने कहा—"इन सूत पुत्र कर्ण को ही देखो, संसार में इनके समान शूरवीर कोई दूसरा है क्या ? समस्त महाभारत के एक मात्र कारण ये ही वीर हैं। दुर्योधन इन्हीं के बल बूते पर फूला-फूला फिर रहा है। इनको मारना तो मृत्यु के मारने के सदृश है।"

भगवान् ने कहा—"अच्छा, और ?"

खीजकर अर्जुन ने कहा—"और महाराज कहाँ तक गिनाऊँ. एक, दो, दश, बीस, लाख दो लाख हों, तो उनके नाम भी गिनाऊँ। असंख्यों योद्धा हैं, एक से एक बढ़कर हैं। इन सबको मैं कैसे मार सकूँगा ?"

भगवान् ने कहा—"तुम बार-बार भूल जाते हो, मैं कई बार तो कह चुका, इन सबको तो मैं कालरूप से पहिले ही निर्बल बना चुका हूँ। इन्हें तो मैं मार चुका हूँ।"

अर्जुन ने कहा—"मार चुके हो, तो मुझसे फिर बार-बार मारने को क्यों कह रहे हो ?"

भगवान् ने कहा—"मैं मारने को थोड़े ही कह रहा हूँ, एक धक्का देकर गिराने को कह रहा हूँ। केवल एक ही धक्का दे दो। इनके मूल को तो मैं काट चुका हूँ। एक धक्का लगते ही धराशायी हो जायँगे।"

अर्जुन ने कहा—"महाराज, मुझे तो इन इतने बड़े-बड़े महारथियों को छूने मे भी भय लगता है।"

भगवान् ने कहा—"मेरी बात मानो भी तो सही भय से व्यथित मत होओ। "भय को छोड़ दो।"

अर्जुन ने पूछा—भय छोड़कर क्या करूँ ?"

भगवान् ने कहा—"युद्ध करो।"

अर्जुन ने कहा—"युद्ध तो भगवन् ! जूआ है। इसमें कभी

जय भी होती है, कभी पराजय भी। मैं पराजित ही हो गया तो ?"

भगवान् ने कहा—"तुम घबराओ मत, मेरी वाणी पर विश्वास करो। मैं कहता हूँ और दृढ़ता के साथ कहता हूँ—तुम युद्ध में अपने प्रतिपक्षियों शत्रुओं को अवश्य ही जीत लोगे।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! जब संजय ने यह सब समाचार धृतराष्ट्र को सुनाया, तो धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा—संजय! अर्जुन श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर फिर क्या करते भये? इस पर संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—"राजन्! श्री कृष्णचन्द्र भगवान् की दृढ़ता के साथ कही हुई ऐसी बातें सुनकर बैठे से खड़ा हो गया। उसका सम्पूर्ण शरीर थर-थर काँप रहा था उसके दोनों हाथ जुड़े हुए थे। उसने एक बार श्रद्धाभक्ति से श्रीकृष्णचन्द्र जी को प्रणाम किया। दो बार प्रणाम किया। बारम्बार प्रणाम किया। फिर प्रणाम कर लेने के अनन्तर गद्गद कंठ से भगवान् की पुनः स्तुति करने लगा।"

सूतजी कह रहे हैं—सो, मुनियो! अब जिस प्रकार अर्जुन ने पुनः भगवान् की स्तुति की इसका वर्णन मैं आगे करूंगा।

छप्पय

संजय कहिवे लगे-सुनी अरजुन हरि बानी।
सब बिधान बनि गये प्रथम अबहीं यह जानी॥
है कें अति भयभीत किरीटी अरजुन काँपत।
पुनि-पुनि करै प्रनाम चरन में भय तैं हाँपत॥
सब तन रोमाञ्चित भयो, थर-थर काँपत व्यथित मन।
गद्गद बानी तैं तबहिँ, लग्यो सभय इस्तुति करन॥

—★—

अर्जुन ने कहा—"इन सूत पुत्र कर्ण को ही देखो, संसार में इनके समान शूरवीर कोई दूसरा है क्या? समस्त महाभारत के एक मात्र कारण ये ही वीर हैं। दुर्योधन इन्हीं के बल बूते पर फूला-फूला फिर रहा है। इनको मारना तो मृत्यु के मारने के सदृश है।"

भगवान् ने कहा—"अच्छा, और?"

खीजकर अर्जुन ने कहा—"और महाराज कहाँ तक गिनाऊँ, एक, दो, दश, बीस, लाख दो लाख हों, तो उनके नाम भी गिनाऊँ। असंख्यों योद्धा हैं, एक से एक बढ़कर हैं। इन सबको मैं कैसे मार सकूँगा?"

भगवान् ने कहा—"तुम बार-बार भूल जाते हो, मैं कई बार तो कह चुका, इन सबको तो मैं कालरूप से पहिले ही निर्बल बना चुका हूँ। इन्हें तो मैं मार चुका हूँ।"

अर्जुन ने कहा—"मार चुके हो, तो मुझसे फिर बार-बार मारने को क्यों कह रहे हो?"

भगवान् ने कहा—"मैं मारने को थोड़े ही कह रहा हूँ, एक धक्का देकर गिराने को कह रहा हूँ। केवल एक ही धक्का दे दो। इनके मूल को तो मैं काट चुका हूँ। एक धक्का लगते ही धराशायी हो जायँगे।"

अर्जुन ने कहा—"महाराज, मुझे तो इन इतने बड़े-बड़े महारथियों को छूने में भी भय लगता है।"

भगवान् ने कहा—"मेरी बात मानो भी तो सही भय से व्यथित मत होओ। "भय को छोड़ दो।"

अर्जुन ने पूछा—भय छोड़कर क्या करूँ?"

भगवान् ने कहा—"युद्ध करो।"

अर्जुन ने कहा—"युद्ध तो भगवन्! जूआ है। इसमें कभी

जय भी होती है, कभी पराजय भी। मैं पराजित ही हो गया तो ?"

भगवान् ने कहा—"तुम घबराओ मत, मेरी वाणी पर विश्वास करो। मैं कहता हूँ और दृढ़ता के साथ कहता हूँ—तुम युद्ध में अपने प्रतिपक्षियों शत्रुओं को अवश्य ही जीत लोगे।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! जब संजय ने यह सब समाचार धृतराष्ट्र को सुनाया, तो धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा—संजय ! अर्जुन श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर फिर क्या करते भये ? इस पर संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—"राजन् ! श्री कृष्णचन्द्र भगवान् की दृढ़ता के साथ कही हुई ऐसी बातें सुनकर बैठे से खड़ा हो गया। उसका सम्पूर्ण शरीर थर-थर काँप रहा था उसके दोनों हाथ जुड़े हुए थे। उसने एक बार श्रद्धाभक्ति से श्रीकृष्णचन्द्र जी को प्रणाम किया। दो बार प्रणाम किया। बारम्बार प्रणाम किया। फिर प्रणाम कर लेने के अनन्तर गद्गद कंठ से भगवान् की पुनः स्तुति करने लगा।"

सूतजी कह रहे हैं—सो, मुनियो ! अब जिस प्रकार अर्जुन ने पुनः भगवान् की स्तुति की इसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

संजय कहिबे लगे-सुनी अरजुन हरि बानी।
सब विधान बनि गये प्रथम अबही यह जानी॥
है कैं अति भयभीत किरीटी अरजुन काँपत।
पुनि-पुनि करै प्रनाम चरन में भय तैं हाँपत॥
सब तन रोमाञ्चित भयो, थर-थर काँपत व्यथित मन।
गद्गद बानी तैं तबहिँ, लग्यो समय इस्तुति करन॥

—★—

अर्जुन द्वारा नमस्कार स्तुति (१)

[१७]

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥*

(श्री भग० गी० ११ अ० ३६, ३७ श्लोक)

छप्पय

अरजुन इस्तुति करें—नाथ! यह रूप दिखायौ।
अति दुरधर दुरधरष भयंकर वेष बनायौ॥
प्रभु कीर्तन तैं जगत प्रहरषित अति ई स्वामी।
होवै हिय अनुराग जगत्पति अन्तरयामी॥
राक्षस अति भयभीत है, भागत सबई दिशनि महँ।
नमन करैं सब सिद्धगन, कौतूहल इन मननि महँ॥

---

* अर्जुन ने कहा—हे हृषीकेश! आपकी कीर्ति से सम्पूर्ण जगत प्रमुदित और अनुरंजित होता है, यह उचित ही है। राक्षसगण भयभीत हुए सभी दिशाओं में दौड़ रहे हैं और सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं॥३६॥

हे महात्मन्! आप ब्रह्माजी के भी आदिकर्ता हैं, आप सबसे बड़े

ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जितनी भी स्थावर जंगम सृष्टि है, सब प्रभु द्वारा विनिर्मित है। जीव भगवान् की भगवत्ता को भूलकर भटक रहा है। अपने ही अन्तःकरण में स्थित उनको बाहर खोज रहा है। भगवान् की महत्ता जब स्मरण नहीं रहती, तभी जीव अपने को स्वतंत्रकर्ता मानने लगता है। जब उन्हीं की कृपा से जीव को भगवान् की महत्ता का बोध हो जाता है, वे ही कृपा करके अपना यथार्थ रूप दिखा देते हैं, तब प्रणत होकर स्तुति करने लगता है, क्षमा प्रार्थना करने लगता है, अपने अपराधों के लिये क्षमा याचना करने लगता है।

इस कृष्णावतार में भगवान् ने साधारण जीवों के ही नहीं इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम जैसे लोकपालों के गर्व को भी खर्व किया। इन्द्र को अभिमान हो गया था मैं ही एकमात्र तीनों लोकों का अधीश्वर हूँ, मेरी ही पूजा होनी चाहिये। भगवान् ने उसके मद को चूर्ण करने के निमित्त नंदादि गोपों से उनकी वार्षिकी पूजा बंद कराके उसके स्थान पर गोवर्धन पर्वत की पूजा करायी और स्वयं गोवर्धन बनकर गोपों को दर्शन दिये। इस पर कुपित होकर इन्द्र ने प्रलयंकारी वर्षा करके समस्त व्रजवासियो को उनके गोधन सहित डुबाना चाहा, तो भगवान् ने गोवर्धन पर्वत को ही सात दिन तक धारण करके सबकी रक्षा की। तब इन्द्र भगवान् के महत्व को समझ गये। उन्होंने आकर भगवान् की स्तुति की प्रणाम किया और अपने अपराधों के लिये क्षमा याचना की।

हैं फिर हे अनन्त ! वे लोग आपको नमस्कार क्यों नहीं करेंगे ? हे देवेश ! जो सत् और असत् उससे भी परे अक्षर ब्रह्म है, हे जगन्निवास वह ब्रह्म आपही हैं ॥३७॥

इसी प्रकार वरुण के दूतों द्वारा नन्दजी को वरुण लोक में ले जाने पर वरुण लोक जाकर अपनी महत्ता दिखायी। यमराज के यहाँ से इतने दिन पश्चात् भी गुरु पुत्र को लाकर अपनी भगवत्ता प्रकट की। कितना भी बड़ा जीव क्यों न हो, कितने भी भारी पद पर प्रतिष्ठित क्यों न हो, समय पाकर वह भगवान् की भगवत्ता को भूल ही जाता है, फिर भगवान् ही कृपा करके अपनी महत्ता दिखाकर उसे विशुद्ध मार्ग पर--सुपथ पर--लाते हैं। औरों की बात जाने दीजिये जो ब्रह्माजी तीनों देवों में से एक देव हैं। समस्त चराचर विश्व के रचयिता हैं वे भी कभी-कभी उनकी महिमा को भूल--से जाते हैं।

जब भगवान् वन में ग्वाल बालों के साथ बन भोजन कर रहे थे, गाँव के गँवार ग्वारियों के हाथों से जूठे पदार्थ खा रहे थे, तब ब्रह्माजी को भ्रम हुआ यह कैसा ब्रह्म है, जो ग्वारियों का जूठा खा रहा है। अतः इसकी परीक्षा लेनी चाहिये। यही सोचकर पहिले समस्त बछड़ों को फिर उनके साथी सब ग्वाल बालों को वे चुरा ले गये। भगवान् ने सर्वथा वैसे ही ग्वाल बाल और बनाकर वर्ष भर स्वयं ही बछड़े बनकर चरे और ग्वालबाल होकर उन्हें चराया। वास्तव में तो चारा, चरने वाले और चराने वाले वे ही हैं। जब ब्रह्माजी को एक वर्ष पश्चात् भगवान् की महिमा का पता चला तो उन्होने स्तुति करते हुए कहा था—कहाँ तो साढ़े तीन हाथ--सप्त विलस्त--का मै एक साधारण जीव और कहाँ आप जिनके प्रत्येक रोम में अगणित ब्रह्माण्ड और उन अगणित ब्रह्माण्डों में अगणित ब्रह्मा, विष्णु महेश हैं। मैं आपकी महिमा को भला समझ ही कैसे सकता हूँ। ब्रज में कुछ कथावाचक कहा करते हैं, कि ब्रह्माजी जब ग्वाल बालकों को भी छिपाकर श्रीकृष्ण को देखने आये कि देखें अब श्रीकृष्ण क्या

करते हैं, तो उन्होंने उधर से जाते असंख्यों ऊँट देखे। उनकी पीठों पर बड़ी-बड़ी तीन-तीन पेटियाँ लदी हुईं थीं ऊँट वालों से उन्होंने पूछा—भैया, इन ऊँटों में क्या लदा हुआ जा रहा है?"

ऊँट वालों ने कहा—"इन पेटियों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश लाद कर भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डों में भेजे जा रहे हैं। पहिले ये दूसरे दूसरे ब्रह्माण्डों के अधिपति थे, अब इनका स्थानान्तरण हो गया है। बदली करके अन्यत्र भेजे जा रहे हैं।"

ब्रह्माजी को विश्वास नहीं हुआ। ऊँट बिठाकर जो उन्होंने पेटियों को देखा, तो किसी में चार मुख वाले, किसी में आठ मुख, १६-३२-शत सहस्र मुख वाले ब्रह्मा बैठे हैं। ब्रह्माजी का सब ब्रह्मापने का अभिमान चूर हो गया। फिर उन्होंने भगवान् को बारंबार प्रणाम की, भाँति-भाँति की स्तुति की और अपने अपराध के लिये क्षमा याचना की। जीव का एक मात्र पुरुषार्थ यही है, कि वह बारंबार भगवान् को प्रणाम करे, फिर उठे फिर प्रणाम करे, साष्टांग प्रणाम करे। हृदय से वाणी से, शरीर से निरंतर प्रणाम ही करता रहे। प्रणाम ही प्रभु की प्राप्ति का परमोत्कृष्ट सर्वसुलभ साधन है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् के भयंकर विश्वरूप को देखकर गद्गद कंठ से स्तुति करते हुए अर्जुन कहने लगे—"हे भगवन्! आप ही समस्त इन्द्रियों को उनके अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त कराने वाले हो। हे प्रभो! आपकी जो परम प्रबलतम कीर्ति है, आपके नामों का, गुणों का तथा कर्मों का जो कमनीय कीर्तन होता है, उसे सुनकर राक्षसों को छोड़कर सभी प्राणी परम प्रमुदित हो रहे हैं। केवल मैं ही प्रहर्षित नहीं हो रहा हूँ। सम्पूर्ण चराचर जगत् हर्षित हो रहा है तथा आप के प्रति अनुरक्त हो रहा है। सो, ऐसा होना हो चाहिये। आप इसी योग्य हैं।

जितने राक्षसेतर जीव हैं वे तो परम प्रमुदित हो रहे हैं, महोत्सव मना रहे हैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं, आपको नमस्कार प्रणाम कर रहे हैं, किन्तु राक्षसगण भय के कारण भयभीत बने दशों दिशाओं में छिपने के लिये भागे जा रहे हैं। इन देवद्रोहियों को तो भागना ही चाहिये। इनका भागना उचित ही है।"

इनके अतिरिक्त जो कपिलादि सिद्धों का समूह है, वह आप को भाँति-भाँति से नमस्कार कर रहा है। ये सब सिद्ध गण श्रद्धा भक्ति से प्रणाम कर रहे हैं, कोई साष्टाङ्ग कर रहे हैं कोई पंचाङ्ग कर रहे हैं कोई दण्डवत भूमि में ही पड़े आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

प्रभो ! संसार में आप ही तो एक प्रणम्य हैं। क्यों ? इसलिये कि आप उदारता की श्रेष्ठ मूर्ति हैं, परमोदार हैं, महात्मा हैं, अतः हे महात्मन् ! आपको जो वे प्रणाम कर रहे हैं, तो कुछ अनुचित नहीं कर रहे हैं। उन्हें आपको प्रणाम करना ही चाहिये।

हे स्वामिन् ! आप सभी परिच्छेदों से शून्य हैं। आपका कहीं अंत नहीं। अतः हे अनन्त आप को नमस्कार क्यों नहीं की जाय ?

हे देवाधि देव ! संसार में हिरण्य गर्भ से लेकर जितने भी देवगण हैं उन सब के आप ही एक मात्र नियन्ता हैं। जब हे देवेश ! आप सबके स्वामी हैं, तो स्वामी को तो सेवकों द्वारा प्रणाम करना ही चाहिये।

हे जगदाधार ! समस्त जीवों के आप ही एक मात्र निवास स्थल हैं, आप ही सबके आश्रय हैं, अतः हे जगन्निवास आप सभी के प्रणम्य हैं आप सबके जन्म देने वाले हैं। सब आप से ही उत्पन्न

होते हैं। सबका नियंत्रण भी आप ही करते हैं, ब्रह्मादि सभी देवों को उपदेश भी आप ही देते हैं। सबको उत्पन्न करने वाले जो प्रजापति ब्रह्मा कहलाते हैं आप उन ब्रह्माजी के भी जनक हैं, पिता हैं, वे भी आप से ही उत्पन्न हुए हैं अतः आप उनसे गुरुतर हैं, गरीयस हैं, श्रेष्ठतम हैं। इसलिये आपको प्रणाम करना ही चाहिये।

हे अनन्त प्रभो! आप व्यक्त अव्यक्त तथा इनसे परे भी हैं। आप सत् और असत् इन दोनों के मूल कारण हैं। आप से परे कुछ नहीं, आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं। इसलिये सिद्धादि देव गण जो आपको नमस्कार कर रहे है, सम्मुख प्रणत हो रहे हैं, वे उचित ही कर रहे हैं। जब आप सबके प्रणम्य हैं तो ये लोग आप को प्रणाम क्यों नहीं करेंगे। आप एक ही प्रणाम के अधिकारी नहीं। जीव को तो निरंतर आपको प्रणाम करते ही रहना चाहिये। वेद के समस्त मंत्र केवल आपको प्रणाम ही करते हैं। आप ही परम प्रणम्य हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! इस प्रकार अर्जुन भगवान् को प्रणम्य बताकर अब जैसे उनको अनन्त प्रणाम करेंगे। उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

नमन करें क्यों नहीं आपु तो ब्रह्म जनक हो।
सबके करता आदि महात्मा महामहत हो॥
हे अनन्त! देवेश! जगतमय जगनिवास तुम।
सबई तैं अति श्रेष्ठ सगुन साकार सर्व तुम॥
अज अक्षर अव्यक्त अरु, ब्रह्मा हू के बाप हो।
ब्रह्म सच्चिदानन्दघन, सब कछु स्वामी आप हो॥

अर्जुन द्वारा स्तुति और वारम्बार नमस्कार

[१८]

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥*

(श्री भ० गी० ११ अ० ३८, ३९, ४० श्लोक)

छप्पय

आदि देव हैं आपु सनातन पुरुष पुरातन।
आश्रय जगके एक करो पावननि सुपावन॥
तुम्हें जथारथ नहीं नाथ! कोई हू जानें।
जानो सबकूँ तुमहिं जगत सब तुमकूँ मानें॥
तुम ई जानन जोग्य हो, परम धरम हैं आपु विभु।
जगत व्याप्त तुम तैं सकल, आपु अनन्त स्वरूप प्रभु॥

---

* तुम आदि देव हो, पुराण पुरुष हो, तुम ही इस जगत के परमाश्रय हो जानने योग्य तुम ही हो, तुम ही जानने वाले भी हो, तुम ही

जिसके प्रति हृदय में भक्ति उमड़ आती है, उसके ऊपर सर्वस्व निछावर करने की लालसा उत्कट हो सकती है। भक्ति तो वहीं होगी, जहाँ भगवत् बुद्धि हो। भगवान् में और भक्त में कोई अन्तर नहीं होता, अतः भक्ति भगवान् में उनके भक्तों में तदीयों में ही होती हैं। भक्ति का उद्रेक अन्तःकरण में जब उमड़ता है, तो कुछ देने की इच्छा होती है। देने के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हैं, जिस वस्तु पर भी दृष्टि जाती है उसी के सम्बन्ध में सोचते हैं—"यह तो भगवान् की ही दी हुई है, इसे भगवान् को क्या दें। फिर भगवान् सर्वगुणालय, समस्त सद्गुणों के एक मात्र निवास स्थान, उनको यह संसारी क्या अर्पण करें, उन लक्ष्मीपति के यह अनुकूल नहीं। जब कोई भी वस्तु उनके अर्पण करने के उपयुक्त दृष्टिगोचर नहीं होती, तो भक्त भक्ति के भाव में भावित होकर अन्त में बारंबार नमस्कार ही करने लगता है, क्योंकि हृदय से वाणी से तथा शरीर से नमस्कार करने के अतिरिक्त उसके पास कुछ है ही नहीं। अतः वह आगे से, पीछे से, बगल से, बगल से तथा सभी ओर से सतत

परमधाम हो। हे अनन्तरूप ! यह जगत आप से ही व्याप्त है ॥३८॥

तुम ही वायु हो, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, पितामह ब्रह्मा, ब्रह्मा के भी पिता-प्रपितामह-विष्णु-आप ही हो, तुम्हारे लिये सहस्रों बार नमस्कार है, आपके लिये फिर से बारम्बार नमस्कार है, नमस्कार है ॥३६॥

हे अनन्त वीर्य भगवन् ! आपके लिये आगे से नमस्कार है, पीछे से भी नमस्कार है। हे सर्वात्मन् ! आपके लिये चारों ओर से नमस्कार है, आप अमित विक्रम वाले हैं आप इस जगत् को व्याप्त किये हैं। इसी से आप सर्व स्वरूप हैं ॥४०॥

नमस्कार ही नमस्कार करता है। अपने देवता को प्रसन्न करने के लिये उसके पास नमस्कार करने के अतिरिक्त अपना कुछ भी नहीं है।

रुक्मिणी ने अपना संदेश लेकर अपने कुल गुरु-पुरोहित को भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के पास भेजा था। रुक्मिणीजी प्रतिपल भगवान् के सन्देश को पाने के लिये अत्यन्त व्यग्रता के साथ प्रतीक्षा कर रही थी। कुल गुरु, भगवान् का सन्देश ही नहीं लाया अपितु स्वयं साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र को ही अपने साथ लिवा लाया। पुरोहित ने कैसा अद्भुत अनुपमेय कार्य किया है. इः के बदले मे इसे कौन-सी अत्यंत प्रिय वस्तु अर्पण करूँ किन्तु बहुत विचारने पर भी रुक्मिणीजी को इसके अनुरूप कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं हुई। अन्त में कुछ भी न देखकर साश्रुनयनों से हाथ जोड़कर रुक्मिणीजी ने ब्राह्मण को केवल नमस्कार ही किया। (न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा।)

इसीलिये अंजलि बाँधकर नमस्कार करना। इस मुद्रा को समस्त मुद्राओं में श्रेष्ठ मुद्रा-परमामुद्रा-कहा है। इस महामुद्रा से देवता शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। जब भक्ति का उद्रेक चरम सीमा पर पहुँच जाता है, अपनी मर्यादा को उल्लङ्घन करके अमर्यादित बन जाता है, तब चारों ओर से बारंबार नमस्कार करने के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं। (वन्दते जनान्)

एक राजा थे, उनके कुल पुरोहित राज्य छोड कर वृन्दावन वास करने लगे। वृन्दावन में ही बस गये। राजा उनको लेने आये। अत्यन्त आग्रह किया साथ चलने को। राजपुरोहित एक बड़े महात्मा की शरण में गये राजा की हठ जताई, अपनी वृन्दावन न छोड़ने की इच्छा बतायी। महात्मा ने कहा—"राजा

सभी लोकपालों का अंश होता है, अतः उसकी बात मान लो उसके साथ चले जाओ।"

अब क्या करते। वृन्दावन तो स्वयं साक्षात् श्री वृन्दावन विहारी का श्री विग्रह ही है, उसे छोडने में कितना कष्ट होगा। उन्होंने रोते रोते राजा से कहा—"राजन्! आपका अत्यन्त आग्रह ही है, तो मैं आपके साथ चलूँगा ही। किन्तु चलते समय मैं वृन्दावन के लतापताओं से, यहाँ के जीव-जन्तुओं से, ब्रजवासियो विदाई तो ले लूँ। सबसे नमस्कार तो करता चलूँ।"

राजा ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"आपकी जब तक इच्छा हो। तब तक सबसे मिल भेंट लीजिये, सबको नमस्कार प्रणाम कर लीजिये। मै भी तब तक यहाँ रह कर वृन्दावन वास का आनन्द ले लूँ।"

अब राजपुरोहित जी प्रातः उठते वृन्दावन की परिक्रमा में जाते। मार्ग में कुत्ता, बिल्ली, चूहा, गदहा, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्षलता जो भी सामने पड़ता उसे १०८ साष्टाङ्ग प्रणाम करते उसका आलिंगन करते बार-बार नमस्कार प्रणाम करते और रोते-रोते कहते आप कृपा करना अब मेरा वृन्दावन छूट रहा है। इस प्रकार उन्हें प्रणाम करते-करते महीनों बीत गये।

एक दिन मन्दिर से जूठी पत्तल लाती हुई उन्हें मेहतरानी दिखायी दी। भगवान् का महाप्रसाद पाकर जो भक्त लोग पत्तलों पर उच्छिष्ट छोड़ देते हैं, उसे मेहतरानी उठा लाती है। कपड़े से ढके हुए वह उन उच्छिष्ट पदार्थों को लिये जा रही थी। इन्होंने पूछा—"क्या लिये जा रही हो।"

उसने कहा—"महाप्रसाद है।"

आप बोले—"अहा, महाप्रसाद है, महाप्रसाद के दर्शन कराना। उसने कपड़ा हटा दिया। वृन्दावन के मंदिरों में भगवान्

के भोग में नित्य ही कढ़ी और खीर अवश्य बनती है। इन्होंने कढ़ी में के एक पकौड़ी निकाल कर मुख में डाल ली। महाप्रसाद को १०८ बार नमस्कार किया और उस मेहतरानी को १०८ बार साष्टाङ्ग प्रणाम किया।"

राजा साथ ही थे। उन्होंने जब यह दृश्य देखा, तो वे हक्के-बक्के रह गये। मेरा पुरोहित तो पागल हो गया है।

उसने कहा—"महाराज, आपको वृन्दावन त्यागने में बड़ा कष्ट हो रहा है, अतः आप यहीं रहिये। तब उन्होंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए यह पद गाया—"एक पकौडी सब जग जीत्यो।"

मैं कहता हूँ, महाराज, पकोड़ी ने सब जग को नहीं जीता है, अपितु 'करत प्रणाम सकल जग जीत्यो।'

सबको ब्रह्म बुद्धि से बारंबार नमस्कार करने से ही भगवत् साक्षात्कार होता है। भगवान् को आगे से, पीछे से, ऊपर से, नीचे से, सर्वत्र से बारंबार नमस्कार करो। नमस्कार करते ही रहो, करते ही रहो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अर्जुन पुनः स्तुति करते हुए भगवान् को बारबार प्रणाम करने लगा।" भक्ति के उद्रेक में स्तुति करते हुए वह कहने लगा—"प्रभो! यह सृष्टि देव निर्मित है। और इस विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के एकमात्र कारण आप देवाधि देव ही हो, अतः आप आदिदेव हैं। आप इस अपनी रची हुई विविध भाँति की देहों में-पुरियों में-खटिया बिछा कर सोते रहते हो पुरियों में शयन करने वाले होने से अथवा रिक्त स्थानों को पूरित करने वाले होने से आपको लोग पुरुष इस नाम से पुकारते हैं।"

हे पुराण पुरुष! बड़े-बड़े ऋषि महर्षियों को भी आपके आदि

का पता नहीं। आप कब से हैं इसे कोई नहीं जानता। बहुत पुराने होने से आप पुराण नाम से प्रसिद्ध हैं।

हे सर्वालय! चराचर विश्व के आश्रय स्थान आप ही हैं। जब प्रलय काल में तीनों लोक नष्ट हो जाते हैं, तब समस्त जीव आप में ही आश्रय पाते हैं, आप में ही विलीन हो जाते हैं, जिसमें सब कुछ समा जाय उसे निधान कहते हैं, आप इस जगत् के लय स्थान होने से विश्व के परमनिधान हैं।

ऐसी भी बात नहीं, कि आपकी अपरिचयवस्था में जीव आकर आपके भीतर विश्राम करते हों। आप तो सबको जानते हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्ववेत्ता है। जितने जीव हैं, उन सबके इतिहास को आप जानने वाले हैं।

आप भगवन्! वेत्ता ही नहीं ज्ञान का जो विषय है जिसे वेद्य विषय कहते हैं वह वेद्य भी आप ही हैं।

हे शाश्वत! हे स्वामिन्! जहाँ जाकर जीव फिर लौट कर इस संसार में नहीं आता; वह परमधाम भी आप हो हैं।

हे अनन्त रूप प्रभो! यह जो समस्त कार्य वर्ग विश्व है वह आपके ही द्वारा व्याप्त है आप इस समस्त विश्व को अपने से ही ढके हुए हैं। आपकी सत्ता के कारण ही यह स्थित है।

हे सर्व रूप स्वामिन्! आप अनेक रूपों में प्रकट हो रहे हो। वायु बनकर आप हो चल रहे हो, प्राणियों को जीवन प्रदान कर रहे हो। यमराज बनकर आप ही सब का शासन कर रहे हो, जीवों को उनके पाप पुण्यों के अनुसार सुख दुःख भुगवा रहे हो। आप ही अग्नि बनकर सबको जला रहे हो, सबको जिला रहे हो, सबको खिला रहे हो और खिलाये हुए को वैश्वानर होकर पचा रहे हो आप ही वरुण बनकर जल के जीवों का आधिपत्य कर रहे हो, पश्चिम दिशा का लोकपालत्व कर रहे हो।

आप ही चन्द्रमा बनकर औषधियों में अमृत सिंचन कर रहे हो, सब को जीवन दान दे रहे हो। ब्राह्मणों को वेद पढ़ा कर रक्षा कर रहे हो।

आप ही इस समस्त प्रजा को उत्पन्न करके उसके पति बनकर प्रजापति रूप में विराजमान हो रहे हो। अपने मरीचादि पुत्रों से सृष्टि को उत्पन्न कराके पितामह कहलाते हो।

आप ही सब के पितामह-ब्रह्माजी को उत्पन्न कर, उनके भी पिता अर्थात् हम समस्त प्रजा के लोगों के प्रपितामह बन गये हो।

जब आप एक रूप में नहीं रहते। एक के बहुत बन जाते है, तो आपको नमस्कार भी कैसे करें। आप अनन्त को अनन्त बार ही नमस्कार भी करना चाहिये। अतः नमस्कार है भगवन्! प्रभो! हमारे नमस्ते स्वीकार करिये। आपको एक बार, सैकड़ों बार सहस्रों बार नमस्कार है।

नमस्कार करके रुकना नहीं। रुककर करें भी तो क्या करें। नमस्कार करते रहना ही आपकी प्राप्ति का एकमात्र साधन है अतः फिर-फिर नमस्कार है। नमो नारायणाय। नमो भगवते-वासुदेवाय। नमः संकर्षणाय च। नमस्ते भगवन्! गोविन्दाय नमों नमः नमस्ते सिते ते जगत्कारणाय।

प्रभो! आपको सामने से नमस्कार है। पहिले आपको नमस्कार है, पीछे से नमस्कार है। समस्त दिशाओं में स्थित आप को नमस्कार है। अनन्तवीर्य शाली अमित विक्रमशाली आपको नमस्कार है। प्रभो! आप सर्व रूप हैं, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् को आप व्याप्त किये हुए बैठे हैं अतः मेरा बारंबार नमस्कार स्वीकार कीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार अर्जुनजी भक्ति के कारण अत्यन्त विह्वल होकर भगवान् को नमस्कार करते हुए

अर्जुन द्वारा क्षमा याचना

[१६]

संजय उवाच

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वाऽपि ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥*

(श्री भग० गी० ११ अ० ४१, ४२ श्लोक)

छप्पय

सखा समुझि कें नाथ ! अवज्ञा अधिक करी है ।
महिमा जाने बिना व्यरथ की बात बकी है ॥
बिना मान सम्मान करे सम्बोधन अनुचित ।
हे यादव ! हे सखा ! कृष्ण ! हे स्वामी अच्युत ॥
जो कछु कह्यो प्रमाद वश, समुझी नहिँ महिमा विभो ।
क्षमा करें करुना अयन ! विश्वम्भर पालक प्रभो ॥

---

* हे कृष्ण ! अब तक मैं आपको अपना सखा ही मानता था, ऐसा मानकर ही मैंने जो हठ पूर्वक आपको, हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखा ! इस प्रकार कहा, यह सब मैंने प्रेम से या प्रमाद से तुम्हारी महिमा को न जानते हुए ही कहा था ॥४१॥

हे अच्युत ! मैंने आपसे विहार, शय्या, आसन और भोजन मे हंसी

जो हमसे ज्येष्ठ हैं, श्रेष्ठ हैं, वय में, वीर्य में, वैभव में तथा सभी बातों में उत्तम हैं, वे यदि वेष बदलकर-अपने को छिपाकर-हमारे पास रहने लगें-हमारी क्षुद्र सेवा करने लगें-हमारे अधीन रहकर, दास बनकर अपने को छिपाये रहें, तो हम उनके साथ साधारण सेवकों के ही समान वर्ताव करेंगे। पीछे हमें पता चल जाय, कि ये हमारे सेवक नहीं थे तो हमारे स्वामी बनने योग्य हैं, तो हमें कितना पश्चात्ताप होगा। उस समय क्षमा याचना के अतिरिक्त दूसरा कोई प्रायश्चित्त ही नहीं। उस समय मन में कैसा पश्चात्ताप होता है हाय! हमने अज्ञान में-बिना इनका महत्त्व जाने कैसी-कैसी अनुचित बातें इनसे कह दीं।

महाराज नल जब जूए में अपना सर्वस्व हार गये और इनके भाई ने इन्हें राजधानी से एक वस्त्र में सपत्नीक निकाल दिया तो ये वनों में भटकते रहे। कलियुग ने इन्हें बहुत कष्ट दिया। इनको इनकी पत्नी दमयन्ती से पृथक् करा दिया। इनका रूप कुरूप कर दिया। ये अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी का काम करते हुए रथ चलाने की नौकरी करने लगे। कहाँ तो इतने जगत् प्रसिद्ध प्रतिष्ठित राजा नल और कहाँ सारथी का अत्यन्त हीन कार्य। किन्तु वे विपत्ति के दिन काटने को अपने को छिपाये हुए सब करते रहे, सब मानापमान सहते रहे। अन्त में जब महाराज ऋतुपर्ण को पता चला ये तो महाराजा नल हैं, तब उन्होंने उनसे अपने अनुचित व्यवहार के लिये बहुत-बहुत क्षमा याचना की। महाराज नल ने भी कृतज्ञता

के लिये जो भी कुछ कहा हो, अथवा एकान्त मे, या सबके समक्ष आपका अपमान किया हो, उन सबके लिये मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ, भगवन्! आप अप्रमेय हैं ॥४२॥

प्रकट करते हुए कहा—"महाराज, आपने मेरा बड़ा आदर किया, मुझे कोई भी कष्ट नहीं हुआ। अपने घर के समान रहा।"

इधर महारानी दमयन्ती पति वियोग के कारण रोती चिल्लाती, भूलती भटकती यात्रियों के साथ किसी प्रकार चलती-चलती अपनी मौसी-चेदिदेश को राजधानी में पहुँच गयी। वहाँ उसने अपने को सैरन्ध्री (नायिनि) बताया। राजमाता ने अपनी पुत्री सुनन्दा की दासी के रूप में इन्हें रखा। महारानी दमयन्ती बहुत दिनों तक दासी का कार्य करती रही। पीछे जब राजमाता का तथा सुनन्दा को पता चला कि यह तो विदर्भराज की पुत्री महाराज नलकी पत्नी दमयन्ती है, तो उन्होंने उससे बार-बार क्षमा याचना की।

इसी प्रकार जब द्रौपदी सहित पाँचों पांडव, महाराज विराट् के यहाँ अपने को छिपाकर–वेष बदलकर–अज्ञातवास के वर्ष को पूरा करने के निमित्त नौकरी करने लगे। तब राजा के घर वाले तथा स्वयं राजा भी उनसे सेवकों जैसा ही वर्ताव करते। धर्मराज तो राजा के सभासद ब्राह्मण बनकर रहने लगे। भीम रसोया बनकर भोजन बनवाने का काम करने लगे। अर्जुन नपुंसक वृहन्नला का वेष बनाकर राजकुमारियों को गाना नाचना सिखाने लगे। सहदेव गोपाल बनकर तथा नकुल अश्वपाल बनकर उनकी गोशाला तथा अश्वशाला में नौकरी करने लगे। द्रौपदी विराट् महाराज की राजरानी सुदेष्णा के महलों में सैरन्ध्री (नायिनि) बनकर सेवा करने लगी। पीछे जब महाराज विराट् को उनका परिचय प्राप्त हुआ, तो उन्होंने पांडवों से बहुत-बहुत क्षमा याचना की। महारानी सुदेष्णा तो बहुत ही अधिक लज्जित हुई कि मैंने त्रैलोक्य वंदिता, अयोनिजा, द्रुपदराज पुत्री के साथ मैंने दासी का सा वर्ताव किया।

इन सब घटनाओं से यही शिक्षा मिलती है, कि सभी को भगवान् का ही रूप समझकर–प्राणीमात्र में भगवत् बुद्धि करके–सभी का सदासर्वदा आदर करना चाहिये। कभी भी किसी का भूलकर भी अपमान न करना चाहिये। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। प्राणी भूल जाता है, जब धर्म है, जीव का भूल जाना नैसर्गिक स्वभाव है। इसीलिये इसे बारम्बार पश्चात्ताप करना पड़ता है, क्षमायाचना करनी पड़ती है। पश्चात्ताप करना, क्षमा-याचना करना यह भी परमार्थ का एक सर्वश्रेष्ठ साधन है। कृपा के सागर दयालु प्रभु क्षमा याचना करने पर जीव को क्षमा कर देते हैं। वे यदि क्षमा न कर दें तो जीव का उद्धार हो ही नहीं सकता। जीव तो सहस्र-सहस्र अपराधों का भाजन ही है। इसे एक मात्र भगवान् की कृपा का ही सहारा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् के अलौकिक अदृष्ट पूर्व, अद्भुत, अचिन्त्य, दिव्य प्रभाव को देखकर अर्जुन का हृदय भर रहा था। उनका हृदय उन्हें बारंबार कचोट रहा था, उन्हें आत्मग्लानि हो रही थी, महान् पश्चात्ताप हो रहा था। उसी आत्मग्लानि के आवेश में वे भगवान् से क्षमा याचना करने लगे।"

वे बोले—"भगवन्! आप मेरे अपराधों को क्षमा कर दीजिये।"

भगवान् ने कहा—"कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा भी कर दें। तुमने क्या अपराध किया है?"

अर्जुन ने कहा—"मैं आपको अब तक अपना सखा मानता रहा था।"

भगवान् ने कहा—"मैं तो प्राणी मात्र का सखा हूँ, सखा मानना तो कोई अपराध नहीं।"

अर्जुन ने कहा—"सखा मानना भले ही अपराध न हो, किन्तु मैं तो अब तक अपने को आप से श्रेष्ठ समझता रहा था। अपने उत्कर्ष को प्रकट करने के निमित्त कभी-कभी तिरस्कृत करने वाले जैसे वचन कह देता था। आपका तिरस्कार कर बैठता था। बड़ों को हुंकृत त्वंकृत करके बोलना उनका अशस्त्र वध ही शास्त्रकारों ने बताया है। मैं ऐसे ही आपको तिरस्कार सूचक शब्दों में सम्बोधन कर बैठता था।"

भगवान् ने कहा—"तुम कभी मेरा तिरस्कार तो नहीं करते थे। कौन-से ऐसे सम्बोधन कहे। जिनके कारण तुम्हें ऐसा पश्चात्ताप हो रहा है?"

अर्जुन ने कहा—'बड़े लोगों का आधा नाम लेना ही उनका तिरस्कार है। उनके आगे पीछे सम्मान सूचक श्री या जी न लगाना भी उनका तिरस्कार ही है। मुझे कहना चाहिये था हे यादवेन्द्र जी किन्तु मैं ऐसा न कहकर कभी-कभी कह देता था। हे यादव! तुम ऐसा काम कर लाओ। मुझे कहना चाहिये था भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी, सो मैं ऐसा न कहकर, कभी-कभी कह देता था—"हे कृष्ण! मेरे रथ को जोत लाओ। मुझे कहना चाहिये था—हे प्राणाधार! हे अशरण शरण! हे प्राणी मात्र के एक मात्र सुहृद! सो ऐसा न कहकर कभी कह देता था—"हे सखे! चलो घूम आवें।"

भगवान् ने कहा—"तो इससे मेरा बिगड़ ही क्या गया?"

अर्जुन ने कहा—"आपका तो कुछ नहीं बिगड़ा। मेरा ही सब कुछ बिगड़ गया। यह सब हुआ अज्ञान के ही कारण। अब तक मैं आपकी ऐसी महिमा से अपरचित था। आपकी महती महिमा को जानता नहीं था।"

भगवान् ने कहा—"अरे, भाई! तुमने तो ये सब बातें प्रेम